अध्याय–द्वितीय

नाट्यशास्त्र का परिचय

- 2:1 नाट्यशास्त्र का रचना काल
- 2:2 नाट्यशास्त्र के रचयिता
- 2:3 नाट्यशास्त्र का स्वरूप
- 2:4 नाट्यशास्त्र के संस्करण
- 2:5 नाट्यशास्त्र के समस्त अध्यायों का संक्षिप्त विवरण

द्वितीय अध्याय

नाट्यशास्त्र का परिचय

भारतीय संगीत शास्त्र में ग्रंथों की रचना की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। आचार्य भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना हजारों वर्षों पूर्व की गई। जिसका महत्व वर्तमान में भी बना हुआ है। नाट्यशास्त्र शास्त्रीय संगीत की परिपाटी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। भरत कृत नाट्यशास्त्र में नाट्य के अलावा संगीत का भी विस्तृत ज्ञान दिया गया है। नाट्यशास्त्र में सिर्फ नाट्य नहीं बल्कि इसमें काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र, संगीतशास्त्र तथा पुराणप्रोक्त भुवन कोषादि जैसे अन्य विषयों के भी नियम बताये गए है, अर्थात् यह कहना गलत नहीं होगा कि ऐसी कोई कला नहीं हैं, जिसका वर्णन इस ग्रन्थ में न किया गया हो। नाट्यशास्त्र एक ऐसा पुष्प गुच्छ है, जिसमें सभी प्रकार के रंग व पुष्प देखने को मिलते है। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद, नीति–शास्त्र, अध्यात्म, व्याकरण शास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, शिल्प, संगीत, अभिनय, रस आदि सभी विषयों की विधाओं की चर्चा देखने को मिलती हैं। यह ग्रन्थ देवों, दानवों, मनुष्यों आदि सभी के लिए आमोद–प्रमोद मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन है। यह चित्त के सुख के अभी विषयों की चर्चा करने वाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भाव–रस आदि का भी परिमार्जन कर तृप्त करने वाला मनोरम शोध है। यह जाति भेंद, वर्गभेंद से वयोभेंद आदि नैसर्गिक एवं सामाजिक विभेंदों से निरपेक्ष भिन्न रूचि की जनता का सामान्य रूप से समाधान करने वाला एवं कांता चाक्षुषक्रतु है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रथा के अनुरूप नाट्यशास्त्र के आद्य रचियता प्रजापति ब्रह्माजी को माना जाता है। जिन्होंनें ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय, तथा अथर्वेद से रस को धारण कर एक पंचम वेद का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे नाट्यवेद कहा गया। जिसमें नाट्य को विशेष स्थान दिया गया।

एक वृतांत के अनुसार त्रेता काल में जनता उदासी से विपत्ति ग्रस्त थी, तब भगवान इंद्र के अनुरोध पर ब्रह्माजी ने चारों वर्णों और मुख्य रूप से शुद्र जाति के आमोद–प्रमोद और आनंद हेतु नाट्यवेद नामक पंचमवेद की रचना की। भारतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना की गई एवं उन्होंनें अपने पुत्रों को भी पढ़ाया। उमा पति महादेव ने सुप्रीत हो जन के अनुराग के लिए लास्य और तांडव का सहयोग देकर इसे उपकृत किया है, अर्थात् ऐसी कोई शास्त्र, कला, शिल्प, विधा नहीं है, जिसका वर्णन नाट्यशास्त्र में न किया गया हो। इस प्रकार यह

कह सकते है, कि नाट्यशास्त्र एक ऐसा महान ग्रन्थ है। जो इष्ट देव की कल्पना और वेद एवं वेदांगों के इष्टों के समान है। जिसका उल्लेख नृसिंहप्रसाद नामक ग्रन्थ में मिलता है। जिस प्रकार परम पुरुष के निश्र्वास से आविर्भूत वेद राशि के द्रष्टा विविध ऋषि प्रकल्पित है। उसी प्रकार महादेव द्वारा प्रोक्त नाट्यदेव के द्रष्टा शिलाली एवं कृशार्श्व और भरत मुनि माने गए है। शिलाली एवं कृशार्श्व द्वारा संकलित नाट्यशास्त्र वर्तमान में मौजूद नहीं है। अब मात्र भरत मुनि द्वारा बनाया हुआ ग्रन्थ ही प्राप्त हुआ है। जो आज नाट्यशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस नाट्यवेद के अंतर्गत लोक जीवन से जुडी सभी मान्यताएं और परम्पराएँ समाहित है। इस कारण जन–मानस में उसका आदर बढ़ गया। यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों वर्गों के प्रदाता एवं जन–मानस के मंगल का कारण बनी। भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र का एक ऐसा भारतीय ग्रन्थ है, जिसमें सभी ललित कलाओं के द्वारा मनुष्य के जीवन की कल्पना की गई। इस प्रकार का ग्रन्थ किसी भी देश या किसी भी भाषा में नहीं लिखा गया है, जिसके अंतर्गत कला के सभी स्वरूपों का इस प्रकार का वर्णन किया गया हैं। हिन्दुस्तान में जिनती भी कलाएं मौजूद है, इन सभी के विभिन्न पक्षों पर जिस प्रकार का संतुलित एवं परिष्कृत विवेचन इस ग्रन्थ के अंतर्गत मिलता है, वैसा किसी भी अन्य ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ के सभी पक्षों को देखने के पश्चात् इसे पंचमवेद की संज्ञा दी गई। इस प्रकार भरत मुनि का यह मान्ना है, कि विश्व में नाट्यशास्त्र के सिवा कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जिसमें कला, ज्ञान, शिल्प, योग आदि की विवेचना हो।

न तज्ज्ञान ण तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला॥
नासौं योगो ण त्त कर्म नाट्येऽस्मित यन्न दृश्यते॥ [(1)]

नाट्यशास्त्र को एक प्रकार का विज्ञान माना जाता है, परन्तु इस सच को भी नाकारा नहीं जा सकता, कि यह कलाओं के भंडारों का कोष है। भरत कृत नाट्यशास्त्र भारत ही नहीं बल्कि विश्व का एक प्राचीनतम ग्रन्थ होने के साथ ही प्रशस्त एवं समृद्ध नाट्य में होने वाले प्रयोगों का परिचय तो दे ही रहा है, साथ ही निर्विवाद रूप में सम्पूर्ण विश्व का एतिहासिक रंग प्रतिष्ठित करता है। भरत कृत नाट्यशास्त्र के स्पष्टीकरण में सप्तदीपा पृथ्वी ही नही सम्पूर्ण अदृष्टलोक भी आ जाते है, अर्थात् भरत के अनुसार नाट्य देवों, राक्षसों, राजाओं, गृहस्थ, एवं ब्रह्मर्षियों वृतान्त दर्शक है। आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र इस समस्त ब्रह्माजी

(1) त्रिपाठी, राधावल्लभ / नाट्यशास्त्र विश्वकोष / अध्याय–1 / श्लोक–6 / पृष्ठ–8

को अपनी तासीर से आकर्षित करता है। भरत कृत नाट्यशास्त्र एक शुद्ध एवं परिष्कृत यज्ञ मानते है। आचार्य भरत और उनके द्वारा रचित नाट्यशास्त्र एतिहासिक की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, किन्तु साहित्य और लोक जीवन में इससे जो आदर्श एवं सक्ष्य प्राप्त होता है, उसमें किसी प्रकार का द्वंद नहीं है। इसकी अहमियत इस दृष्टि से है, कि परवर्ती अनेक सम्बन्धों की गाथा के लिए एक उपजीवी सिद्ध हुआ। नाट्यशास्त्र कला, साहित्य सभी का अनुसरण करने वाला वर्तमान में प्रयोग होने वाला एतिहासिक मानक ग्रन्थ हैं।

यह मात्र एक ग्रन्थ न होकर भारत की प्राचीन कला और काव्य की सदीर्घ परम्परा एवं ललित कलाओं का एक विस्तृत वेद है। यह भावों की रंग स्थली है। नृत्य और संगीत का भंडार है, यह रस की गंगोत्री के समान है और कला तथा काव्य के मान्ने वालों के गीता के लिए समान है। सदियों से इस ग्रन्थ का एक उच्च एवं सम्मान्नीय स्थान रहा है। शोधार्थी का मान्ना है, कि भारत में मौजूद सभी ललित कलाओं की कल्पना नाट्यशास्त्र के बिना असंभव सा है। प्राचीन भारत में व्याप्त सभी कलाओं का सार त्तव स्वरूप व उनकी प्रकृति का वर्णन करने वाला यह एकलौता महान ग्रन्थ है। आचार्य भरत मुनि ने भारत वर्ष की सम्पूर्ण कलाओं का सार अपनी योग्यता के आधार पर अनुप्रणित किया था, जिसका स्वर्ण किर्तिस्थम्भ नाट्यशास्त्र है। ललित कलाओं के इस भंडार रूपी महान ग्रन्थ को भारत में उदात कला चेतना को अनुप्रणित किया। शास्त्रकारों एवं ग्रंथकारों ने नाट्यशास्त्र को नाट्यवेद और इसके रचयिता भरत मुनि के रूप में स्वीकार आदान–प्रदान किया है। कला की दृष्टि से नाट्यशास्त्र एक व्यापक ग्रन्थ है, जिसमें संगीत वास्तु, चित्र, मूर्ति कला एवं नृत्य आदि जितनी भी ललित कलाएं है, इन सभी का शास्त्रीय पक्ष इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। वैदिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थ में जन–मानस के अनुसार व उनकी परम्परा को मान्यता दी और उसे सिद्ध रूप में उद्धत करने की रीती का प्रचलन नाट्यशास्त्र में दिया, जो इसका परिणाम है।(1)

2:1 नाट्यशास्त्र का रचना काल

नाट्यशास्त्र के विषय में भी भरत के व्यक्तित्व के समान ही विद्वानों द्वारा गहन अन्वेषण किया गया है, परन्तु इतने अन्वेषण व खोज के पश्चात् भी नाट्यशास्त्र की रचना के काल का कोई निश्चित निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सका और नाट्यशास्त्र का रचनाकाल ईसा पूर्व से लेकर चौथी

(1) मिश्र, ब्रजवल्लभ (अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम / पृष्ठ–7

शताब्दी तक का समय विभिन्न विद्वानों द्वारा माना गया है। नाट्यशास्त्र की रचना का समय भारतीय विद्वानों के साथ–साथ विदेशी विद्वानों द्वारा भी बताने का प्रयास किया गया, परन्तु वह भी पूर्णतः भ्रमित करने वाला व असंतोषजनक रहा और इसका बिना सोचें–समझे भारतीय विद्वानों द्वारा भी अनुकरण किया गया। इसे ईसा के जन्म के 100–200 वर्ष पहले या बाद का बताया गया, परन्तु सत्य तो यह है, कि वैदिक काल से ही इस महान ग्रन्थ की विषय–वस्तु चली आ रही है। पुराणों व् ग्रंथों से ज्ञात होता है, कि भारत में शिक्षा प्राचीन काल में श्रुत विधि द्वारा दी जाती थी, अर्थात् मौखिक शिक्षा का प्रावधान देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ की एतिहासिकता का पता इस बात से चलता है, कि इस ग्रन्थ से सम्बन्धित विषय वस्तु का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है, रामायण, महाभारत एवं पांतज्जली जैसे ग्रंथों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है, कि भारत में ईसा के कई सौ वर्षों पहले ही नाट्यशास्त्र की रचना हो चुकी थी।[(1)]

नाट्यशास्त्र के समय का निश्चित निर्धारण करने हेतु कई अन्य तथ्य ऐसे प्रस्तुत किये गए, जिनसें नाट्यशास्त्र को उसकी विषय वस्तु की दृष्टि से प्राचीन एवं एतिहासिक होने का पता चलता है। नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक, यमक नामक चार अलंकारों का वर्णन किया गया है। जबकि भामह–दण्डी के काल में छठीं शताब्दी तक इसका धीरे–धीरे विकास होता रहा और इनकी संख्या भी चालीस तक पहुँच चुकी थी, अर्थात् नाट्यशास्त्र में इस अलंकारों की संख्या कुल चार बतायी गई है। इससे यह ज्ञात होता है, कि नाट्यशास्त्र एक प्राचीन ग्रन्थ है। पाणिनी से पहले शिलालि नामक आचार्य द्वारा नटसूत्र की रचना की गई। पाणिनी का काल लगभग 500 ईसा पूर्व का माना जाता है। इस नाट्य सूत्र के पश्चात् ही भरत द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना की गई। नाट्यशास्त्र के 1 से 14 अध्याय तक सम्पादक प्रो० रेग्नों तथा जे० ग्रोसे ने किया, तथा नाट्यशास्त्र की रचना का समय इसके काव्य शास्त्रीय तथा छन्द शास्त्रीय रूप को ही ध्यान में रखते हुए, ईसा से कम एक शती निर्धारित किया। इसके बाद महामहापोध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने विभिन्न प्रकार के प्रमाणों के आधार पर नाट्यशास्त्र का अध्ययन व साक्ष्यों के त्तवों का अध्ययन और विश्लेषण करने के बाद, इस ग्रन्थ का रचनाकाल प्रो० रेग्नो के समान ई० पू० दो शती बताया। प्रो० सिल्वा लेवी ने जूनागढ़ से

(1)मिश्र, ब्रजवल्लभ(अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम / पृष्ठ–10

प्राप्त शिलालेखों और नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त सम्बोधन वाचक स्वामिन, संगृहित, नामन तथा भद्रमुख आदि शब्दों का साम्यता के आधार पर नाट्यशास्त्र का काल शिलालेखों में दिए गए शब्दों की समानता तथा शक आदि जातियों के वर्णन के आधार पर नाट्यशास्त्र की रचना का समय ईसवीं की दूसरी शताब्दी अर्थात् इन क्षत्रपों के स्थिति काल के आस–पास का काल है। क्षत्रपों का समय दूसरी शताब्दी माना गया है।[(1)] परन्तु काणे महोदय प्रो० लेवी के मत का समर्थन नहीं करते है, उनका मान्ना है कि शब्दों का एक जैसे होने के आधार पर नाट्यशास्त्र की रचना का समय दूसरी शताब्दी मान्ना उचित प्रतीत नहीं होता। इसको न मानते हुए यह बताते है, कि इस प्रकार का मत क्यों माना जाये? क्योंकि यह भी हो सकता है, कि यह सभी शब्द सबसे पहले नाट्यशास्त्र में ही प्रयोग हुए हो, बाद में यहीं से शिलालेखों के लिए गए हो। इस मतानुसार नाट्यशास्त्र का काल द्वितीय शताब्दी के पहले का माना जा सकता है।[(2)] डॉ० मनमोहन घोष के अनुसार नाट्यशास्त्र में वर्णित भाषा शास्त्रीय, छन्द शास्त्रीय, खगोल शास्त्रीय एंव भौगोलिक जातियों आदि तथ्यों के आधार पर संगीत, काव्य, कामशास्त्र एवं अर्थशास्त्र पर नाट्यशास्त्र की रचना का समय का पूर्ण वर्णन देते हुए बताया है तथा विचार किया है।

इसका मानना है कि प्रवृतियों के साथ भौगोलिक अभिधानों की संयोजन महाभारत तथा अन्य पुराणों के अनुकरण पर नाट्यशास्त्र में भी संयोजित की गई। डॉ0 मनमोहन घोष ने प्रो० सिल्वा लेवी का अनुसरण न करते हुए बताया है कि नाट्यशास्त्र के साम्यता की ओर ध्यानाकर्षित करते हुए कहा है, कि इसमें प्रयोग होने वाले गन्धर्व सौण्ठत तथा नियुद्ध शब्द नाट्यशास्त्र की परिभाषा के अनुरूप है। डा0 मनमोहन घोष नविवजे माना है कि तथ्यों के अनुसार ही नाट्यशास्त्र की रचना का काल प्रो० सिल्वा लेवी के समान ई० के दूसरी शताब्दीं से तो पहले माना हैं।[(3)] हाल द्वारा रचित गहसताई या गाथासप्तशती एक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ हैं, जिसमें 700 गाथाएं प्राप्त होती हैं। इसकी एक कथा में आलिंगन को रति नाटक का पूर्व रंग बताया गया हैं। नाटक के पहले पूर्वरंग के अनुष्ठान की आवश्यकता की अवधारणा भी नाट्यशास्त्र का ही प्रभाव मानी जा सकती है। गहसताई की रचना का समय पहली

(1) काणे पी0 वी0 / संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास / पृष्ठ 50
(2) काणे पी0 वी0 / संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास / पृष्ठ 50
(3)शास्त्री शुक्ल, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्र / पृष्ठ 41

शताब्दी की करीब मानी जाती है। अतः इससे पूर्व नाट्यशास्त्र की रचना हो चुकी थी। यह बात अलग है, कि गहसताई में उपग्रहम श्रृंगार अभिनय की तुलना नाट्य के पूर्वरंग से की गई है। पूर्वरंग का वर्णन नाट्यशास्त्र के पांचवे अध्याय में किया गया है। गाथा–सप्तशती का काल 200–400 ई० के मध्य में माना जाता है। अतः नाट्यशास्त्र की रचना का काल इसके पूर्व हुई होगी, यह भी मुमकिन है, क्योंकि नाट्यशास्त्र के कुछ भाग ई० के 1–2 शताब्दियों में सम्मिलित किये जाते रहे है, और इसका मुख्य भाग पहले ही तैयारी हो चुकी हो, इस विषय में निम्नलिखित साक्ष्य है। यदि नाट्यशास्त्र का सूत्रभाष्य की शैली के स्वरूप का अध्ययन करें, तो इसके एतिहासिकता प्रमाणित होगी।

सूत्रकाल के करीब लिखी जाने के कारण शायद सूत्र रूप नाट्यशास्त्र को नाट्यवेद कहकर वेद के समान आदर दिया गया। यदि नाट्यशास्त्र के रूप में कुछ आर्याएं और कुछ पद्यात्मक का विवरण और यवनादी शब्द जुड़तें गए। मात्र इस आधार पर सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र को आधुनिक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि नाट्यशास्त्र के मुख्य भाग जो महत्वपूर्ण माने जाते है और जो कलाओं के पूर्ण विस्तार को वर्णित करते है। उनकी रचना ई०पू० 5वीं शताब्दी तक हो चुकी थी। इसमें जो भी भाग जोड़े गए या अन्य संकलित किये गए, वह भी 1–2 शती में हुए होगें। जो कि महाभारत व अन्य पुराणों आदि में भी हुआ माना जाता है।

नाट्यशास्त्र के विविध विषयों के अध्ययन द्वारा अनेकों प्राचीन आचार्यों और ग्रंथों का वर्णन प्राप्त होता है। म०म० काणे के अनुसार नाट्यशास्त्र में वर्णित विश्वकर्मा, पूर्वाचार्यों, कामसूत्र, कामतन्त्र, बृहस्पति, नारद, ताण्डु, पाशुपत आदि अंगहारों के अध्ययन के विषय में ताण्डु ध्रुवा और गन्धर्व के विषय में नारद अर्थशास्त्र के विषय में बृहस्पति गृह रचना तथा वास्तुकला के विषय में विश्वकर्मा शब्द लक्षण के विषय में पूर्वाचार्य तथा इन प्राचीन आचार्यों एवं ग्रंथो के नामों का उल्लेख होने से यह तो अवश्य पता चलता है, कि यह सभी आचार्य नाट्यशास्त्र की रचना के काल में पूर्ण ख्यति प्राप्त कर चुके थे और इनके मतों का अनुसरण सभी के द्वारा किया जा रहा था। इन प्राचीन आचार्यों के साथ–साथ नाट्यशास्त्र के एतिहासिक होने का पूर्व प्रमाण प्राप्त होता है।[(1)] नाट्यशास्त्र के अंतर्गत भारतवर्ष में प्रयुक्त होने वाली सभी प्रचिलित भाषाओं का वर्णन प्राप्त होता है। जिससें इसका रचना काल ई० के पूर्व का सिद्ध

(1)शास्त्री शुक्ल, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्र / पृष्ठ–41

होता है। नाट्यशास्त्र संस्कृत और प्राकृत भाषा का जो स्वरूप प्राप्त करता है। वह अश्वघोष के काव्यों में उपयोग होने वाले प्राकृत भाषा की अपेक्षा परवर्ती ज्ञात होता है। नाट्यशास्त्र के 17वें अध्याय के अंतर्गत सात भाषाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रमाण के आधार पर नाट्यशास्त्र की रचना का समय चौथी शताब्दी से पहले का माना जाता है। नाट्यशास्त्र के अनुवंशय आर्याओं सुत्रनुविद आर्याओं, श्लोक वद्ध कारिकाओं गद्य सूत्र तथा सूत्रभाष्य के स्वरूप में प्राप्त शैली की विविधता नाट्यशास्त्र की एतेहसिकता की ओर इंगित करता है। नाट्यशास्त्र में भारतवर्ष में जितनी भी जनजातियां है। उनका वर्णन किया गया है। जिसमें कृष्ण वर्ण के लोगों में किरात, बर्बर और पुलिंद के साथ आंध्र, द्रमिल तथा काशी कौशल का भी वर्णन प्राप्त होता है। डॉ० मनमोहन घोष के अनुसार बर्बर और पुलिंदो के साथ आन्ध्र तथा द्रमिल का वर्णन प्राचीन अवधारणा की स्थिति का सूचक है।[(1)] श्री आई० शेखर के अनुसार वर्तमान में नाट्यशास्त्र का जो स्वरूप हमारे सामने मौजूद है, वह पूर्व में इस रूप में नहीं था। यह मूल ग्रन्थ का स्वरूप संस्कृत तथा परिवर्धित रूप है।[(2)] यह परिष्कृत मूल ग्रन्थ आज हमें छोटे तथा बड़े दो रूपों में प्राप्त होता है। दोनों में न्यूनाधिक पाठान्तर भी है। भरत ने परम्परा में जिस मूल ग्रन्थ की रचना की थी। वह अपेक्षाकृत छोटा था। मनुष्य की प्रवत्ति सदैव लाघव से विस्तार की ओर रही है।[(3)] श्री शेखर का मत है कि नाट्यशास्त्र का आधुनिक रूप 800 ई० तक परिपूर्ण हो चूका था। परन्तु इसकी ऊपरी सीमा का वास्तविक निर्धारण अन्य मापदंड से ही किया जा सकता है।

ऐसा ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्र के प्रारंभिक पांच तथा अंतिम दो अध्याय बहुत बाद में जुड़े गए। शायद इस समय ब्राह्मणकालीन परम्परा समाप्त हो चुकी थी। उसका पुनर्जागरण अथवा नवीनीकरण गुप्तोत्तर काल में हुआ, क्योंकि इस काल के देवी–देवों का प्रभाव नाट्यशास्त्र पर स्पष्टतः दिख पड़ता है। तद्वत अंतिम अध्यायों में भरत के वंशजों को लेकर अन्य प्रकार की बात कही जा सकती है।[(4)] श्री शेखर के इस विवेचन से ज्ञात होता है कि यह पूर्वकथित नाट्यशास्त्र के अध्यायों को छोडकर शेष भाग की प्राचीनता सिद्ध करना चाहते है। इसी कारण इनकी धारणा है कि पाठ सम्बन्धी चाहे जो भी स्थिति रही हो, परन्तु यह

---

(1)द्विवेदी, पारसनाथ (अनुवाद) / नाट्यशास्त्र / 2–8
(2) खां मोहम्मद इस्माइल / भरत का काल निर्णय / संगीत पत्रिका / / पृष्ठ–25
(3) Shekhar I. /Sanskrit Drama: It's Origin & Decline/ p.42
(4) Shekhar I. /Sanskrit Drama: It's Origin & Decline/ p.43

निश्चित प्रायः है, कि नाट्यशास्त्र अपने मूलरूप से 200 ई०पू० तक अस्तित्व में आ चुका था। श्री पी० आर० भंडारकर ने अपने लेख "कंट्रीब्यूशन टू दी स्टडी ऑफ एण्शिएण्ट हिन्दू म्यूज़िक[(1)] में नाट्यशास्त्र का समय निश्चित किया है। इसके मतानुसार भी नाट्यशास्त्र में प्रक्षिप्तांश है। इन्होनें भारतीय संगीत के प्रसंग में नाट्यशास्त्र के संगीत सम्बन्धी अध्याय का विवेचन किया है और उसकी प्राचीनता सिद्ध करने के अभिप्राय से नाट्यशास्त्र का समय तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निश्चित किया है। इनका कथन है कि नाट्यशास्त्र अमरकोश के पश्चात् की रचना है। परन्तु अद्यावधि सर्वसम्मति से अमरकोष का समय निश्चित नहीं हो सका है। वेबर और मैक्डानेल इसे क्रमशः 11वीं और 5वीं शती की रचना मानते है। भंडारकर ने भरत, कालीदस और अमर द्वारा संगीत सम्बन्धी "मार्जना" और "मूर्च्छना" शब्दों के प्रयोग के आधार पर इस दोनों का समय निश्चित किया है।

कालिदास की कृति में "मार्जना" और "मूर्च्छना" शब्द का प्रयोग मिलता है, परन्तु यह शब्द अमरकोश में नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है, कि इस शब्दकोश की रचना कालिदास के पूर्व हो चुकी थी "मूर्च्छना" शब्द का प्रयोग भरत तथा कालिदास दोनों ने किया है, परन्तु यह भी अमरकोश में नहीं मिलता। परम्परागत कथानुसार अमर कालिदास 400 ई० के समकालीन माने जाते है। यदि उस समय को 100 वर्ष और पीछे ढकेल दिया जाये, तब भी भंडारकर के अनुसार नाट्यशास्त्र का समय 400 ई० से पूर्व नहीं माना जा सकता। इसके मत से इस शास्त्र की रचना इस काल के बाद है।

2:2 नाट्यशास्त्र के रचयिता

भारतीय शास्त्रों तथा ग्रंथो की परम्परा के अनुसार भरत मुनि को नाट्यशास्त्र का प्रणेता माना जाता है, और भरत को पौराणिक पुरुष बताया जाता है, क्योंकि भरत ने ही पौराणिक शैली में नाट्यशास्त्र की रचना की दशरूपक, भावप्रकाशन, रसार्णसुधाकर, नाट्यदर्पण, संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथों में भरत का नाट्यशास्त्र के रचयिता के रूप में याद किया गया। इस स्थान पर प्रश्न उठता है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत एक ही थे या बहुत से? इस विषय में विद्वानों में अनेकों मतान्तर पाए जाते है। अभिनवगुप्त के मतानुसार नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत द्वारा हुई, न कि अनेकों भरत द्वारा अभिनवगुप्त ने अपने से पहले सभी मान्यताओं को

(1)त्रिपाठी, राममूर्ति / नाट्यशास्त्र–भरत काल निर्धारण के प्रयास / संगीत पत्रिका / पृष्ठ–11

नकारते हुए, कहा है कि नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के अंतर्गत प्रथम छः श्लोकों की रचना भरत के किसी शिष्य ने की थी, क्योंकि भरत का नाम अन्य पुरुष के रूप में किया गया है, और कोई भी रचयिता अपने लिए तो अन्य पुरुष नाम का उपयोग नहीं करेगा। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि नाट्यशास्त्र के अंतर्गत जो कुल छत्तीस अध्याय हैं। उनमें जहाँ भी प्रश्न उत्तर का संयोजन हुआ है, वह सभी भरत के शिष्यों द्वारा हुआ होगा, और जो नाट्यशास्त्र का मूल भाग है, उसकी रचना भरत द्वारा की गई है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र को अनेक लोगों के योगदान द्वारा रचित माना जा सकता है। अभिनवगुप्त के वचनों के अनुसार सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र एक ही व्यक्ति द्वारा रचित है, क्योंकि इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है, कि कई लोगों द्वारा मिलकर, इस ग्रन्थ की रचना की गई हो। इस ग्रन्थ के रचयिता ने अपने लिए ही अन्य पुरुष की संज्ञा दी है।[(1)] पुराण आदि में कई भरतों का वर्णन प्राप्त होता है, जो कि– दशरथ पुत्र भरत, दुष्यंत पुत्र भरत, मन्धाता के प्रपौत्र भरत तथा जड़ भरत। यह सभी किसी न किसी राजवंश से सम्बन्धित प्रतीत होते है। जिससे इनके नाट्यशास्त्र रचयिता भरत होने के प्रमाण नहीं मिलता। नाट्यशास्त्र से प्राप्त जानकारी के अनुसार भरत मुनि ने ब्रह्माजी से नाट्यवेद की प्राप्ति की तथा अपने सभी सौ पुत्रों को इस नाट्य वेद का ज्ञान भी दिया। जिससे बाद में इनमें से कई ने अलग–अलग नाट्यशास्त्र के सम्बंधित ग्रंथों की रचना की। भरत ने खुद भी मेहन्द्र–विजय, त्रिपुरदाह (डिम) तथा अमृत मंथन (समवकार) नामक रूपकों के अभिनयों का प्रयोग विभिन्न अवसरों पर किया गया। नाट्यशास्त्र के बाद अन्य नाट्यशास्त्रीय रचनाओं तथा नाटकों आदि के प्रमाण से भी नाट्य रचयिता एवं नाट्यशास्त्र निर्माता के तौर पर भरत मुनि का वर्णन प्राप्त होता है।[(2)] नाट्यशास्त्र रचनाओं से धनिक एवं धनंजय के दशरूपक दशरूपक, नाट्यदर्पण, नंदिकेश्वर के अभिनवदर्पण, शारदातनय के भाव प्रकाशन, अभिनवगुप्त रचित नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती, सिंहभूपाल के रसार्वसुधाकर तथा सागरनंदी के नाटक–लक्षण रत्नकोष आदि सभी नाट्यशास्त्रीय रचनाओं में भरत को बड़ी श्रद्धा के साथ नाट्यशास्त्राचार्य के रूप में वर्णित किया गया है। भरत मुनि भी महर्षि पाणिनि की भांति

(1) मध्ये षटत्रिशदध्यायप्यां यनि प्रश्नप्रतिवचनयोजनानि तानि तच्छिष्यवचना वेत्याहुः / अभिनव गुप्त / अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र–भाग–1 / पृष्ठ–9

(2)शास्त्री शुक्ल, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्र / पृ–8

नाट्य विधा के सूत्रकार के रूप में ही प्रसिद्ध है। अब यह प्रश्न उठता है, कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत एक ही थे या एक से अधिक? इस विषय पर विद्वानों में कई मतान्तर पाये जाते है।

तमिल भाषा में 'पन्नणभरतम्' नामक एक रचना प्राप्त होती है। जिसमें भरत से मिलते जुलते पांच नामों का वर्णन प्राप्त होता है–आदिभरत या वृदभरत, मतंगभरत, हनुमतभरत, अर्जुनभरत और नंदीभरत[(1)] यह सभी नाट्य एवं संगीत के आचार्य माने जाते है। शारदातनय को पंचभारतीयमनाम् के एक ग्रन्थ के होने का पता चलता है। शायद यही वह ग्रन्थ होगा, जिसके अंतर्गत आदिभरत, नंदीभरत, कोहलभरत, दत्तिलभरत और मतंगभरत के सिद्धन्तों को समन्वित कर सम्पादन होगा।[(2)] इन पांचों ने नाट्यवेद का भरण (ग्रहण) किया था, इसलिए वह भरत कहलाये। शारदातनय के कथनानुसार इसी परम्परा के किसी भरत द्वारा अपने से पूर्व के भरतों के सिद्धन्तों का संक्षिप्त वर्णन एकत्र कर एक नाट्य ग्रन्थ को तैयार किया। जो बाद में नाट्यशास्त्र नाम के महान ग्रन्थ रूप में प्रसिद्ध हुआ।[(3)] तत्पश्चात् इन्होनें ही भरत के नाम से ख्याति प्राप्त की। शारदातनय के कथानुसार भरतों ने नाट्यवेद से संक्षिप्त विवरण को एकत्र कर दो संस्करण बनाये, जिसमें से एक संस्करण के अंतर्गत बारह हजार श्लोक थे। जिसका अभिदान ददाशसहस्त्री संहिता था। आन्ध्र लिपि में प्राप्त आदि भरत नामक एक हाथों द्वारा रचित नाट्यशास्त्र का प्रतिरूप प्राप्त होता है।[(4)] अभिनवगुप्त के अनुसार बताया गया है कि नाट्य के पांच भाग या अंग होता है, परन्तु रसाःभाव[(5)] जैसे आदि श्लोक में नाट्य के जो ग्यारह अंग बताये गए है। वह कोहल आदि के अनुसार है, मद्रास के एक ग्रंथालय में हस्तलिपि ग्रंथों की सूची में कोहल हस्य नाम का एक खंडित ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इस प्रकार कोहल नाट्यशास्त्र और संगीत शास्त्र के आचार्य थे एवं वर्तमान नाट्यशास्त्र में उनके ग्रन्थ के कुछ भाग अवश्य समाहित है।[(6)] नाट्यशास्त्र के अनुसार भरत पुत्रों में

---

(1)द्विवेदी, पारसनाथ (अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम् (भारतीय साहित्य संगीतपम्परा और भरतार्णव / आगरा / पृष्ठ–69) / पृ0–18

(2) कवि प्रो0 रामकृष्ण / भरतकोश भूमिका / पृष्ठ–16

(3)द्विवेदी, पारसनाथ(अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम् / भरतानांवृहदभरत / नंदिभरत / कोहलभरत / दत्तिलभरत / मतंग / पृ–18

(4)द्विवेदी, पारसनाथ(अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम् / (भंडाकरप्राच्यविद्यापत्रिका / पृष्ठ134–149 / पृ–18

(5)शास्त्री शुक्ल, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्र / अध्याय–6 / श्लोक–20

(6) कुमार डे.सुशील / संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास / पृष्ठ–29

दत्तिल के नाम का उल्लेख मिलता है। अभिनवगुप्त ने ध्रुवागीति के विषय में दत्तिल का वर्णन मिलता है, और ताल के विषय में उनका उद्धरण उद्धत किया है। सिंहभूपाल ने दत्तिल का वर्णन नाट्यशास्त्रकार के रूप में किया। शिल्पादिकारण नाम के तमिल ग्रन्थ के अंतर्गत मतंगभरत का वर्णन मिलता है। सरस्वती महल की ग्रन्थ सूची में क्रमांक संख्या 2–4 पर हनुमतभरत नामक ग्रन्थ का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें संगीत और नृत्य के विषय में चर्चा प्राप्त होती है। शारदातनय के भाव प्राकाशन में हनुमतभरत के विषय में जानकारी मिलती है।

नाट्यशास्त्र के प्रमाणों के आधार पर ज्ञात होता है, कि इसके पहले भरतों की एक परम्परा विद्यमान रही है। इस परम्परा में नाट्य और संगीत के विषय पर आधारित अनेकों ग्रन्थ रचित है। इसी आधार पर किसी आचार्य ने उन सभी ग्रंथों से सार को संग्रहित कर एक सुव्यवस्थित संग्रह ग्रन्थ सम्पादित किया। जो नाट्यशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार नाट्यशास्त्र एक संग्रह ग्रन्थ है। रामकृष्ण कवि के अनुसार है कि वृद्ध भरत ने बारह हजार श्लोकों में एक ग्रन्थ तैयार किया था, जिसके कुछ भाग प्राप्त है। दूसरे संस्करण में छः हजार श्लोक थे, जिसका अभिधान षटसाहस्त्रीसंहिता था। इसके सम्पादक नन्दी भरत थे।**(1)** नाट्यशास्त्र के काव्यमाला संस्करण के अंतिम अध्याय के अंत में समाप्तश्चार्य नंदिभरत संगीत पुस्तक में यह प्राप्त होता है। जिससे इस बात का पता चलता है, कि नंदिभरत नामक ग्रन्थ निश्चित तौर पर मौजूद रहा है। मैसूर एवं कुर्ग की हस्तप्रति ग्रंथो की सूची में नंदिभरत नाम की एक कृति का वर्णन है। मद्रास की हस्त रचित ग्रंथों की सूची में नंदिभरत नामक भरतार्थ चन्द्रिका नाम का ग्रन्थ मौजूद है। अभिनवगुप्त नंदिभरत को एक व्यक्ति न मान कर नंदि और भरत दो अलग–अलग व्यक्ति मानते है, और उनका दूसरा नाम तण्डु मुनि बताते है। कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार नंदिभरत नंदि के शिष्य भरत को बताते है। कन्हैयालाल पोद्दार के कथानुसार भरत को अन्य भरत से अलग करने हेतु नंदिभरत नाम का प्रयोग किया गया। नाट्यशास्त्र के रचयिताओं में कोहल भरत का नाम एक महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्यशास्त्र के अंतिम अध्याय में हुई, एक भविष्यवाणी के स्वरूप यह दर्शाया गया है कि नाट्यशास्त्र का जो भाग शेष रह गया है। उसका वर्णन कोहल करेगे (शेषमुत्तरतन्त्रेण कोहलः कथग्रिष्यति**(2)** इससे यह पता

(1) कवि, रामकृष्ण / भरतकोश भाग–1 / पृष्ठ–2
(2)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–36 / श्लोक–28

चलता है, कि कोहल द्वारा नाट्यशास्त्र पर अवश्य ही कोई ग्रन्थ लिखा होगा। षष्ठ अध्याय इस प्रकार नाट्यशास्त्र के प्रणेता सिद्ध होते है। आचार्य अभिनवगुप्त के काल में भी यही भावना प्रतीत होती है, कि नाट्यशास्त्र भरतादि द्वारा रचित है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस बात का खण्डन करते हुए कहा है, कि नाट्यशास्त्र की सर्वप्रथम रचना सदाशिव फिर ब्रह्म और अंत में इसकी रचना भरत मुनि द्वारा की गई। अतः इसके रचयिताओं का क्रम आचार्य सदाशिव, ब्रह्माजी तथा भरत थे। भाव प्रकाशन के अनुसार नाट्यशास्त्र की दादश सहस्त्री संहिता के प्रणेता आदि भरत या फिर बृहत भरत थे। जिसके कुछ गद्यांश में भी यह उद्धृत किये गए है। जिससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि आदि या बृहत भरत की रचनायें भरत के उत्तर काल में ही हुई। जिसमें भरत शब्द को विशेषण लगाकर नाट्यशास्तत्रीय ग्रंथों को निर्देशित किया गया है। इस कारणों से भरत मुनि ही नाट्यशास्त्र के प्रणेता सिद्ध होते है। डॉ० सुशील कुमार डे ने अपने एक लेख "दी प्रॉब्लम ऑफ आदि भरत एंड भरत में आदि भरत" के अंतर्गत विवेचना करते हुए, यह निष्कर्ष दिया है, कि आदि भरत के नाम से प्राप्त उदहारणों में अधिकांश भरत मुनि के नाम से प्राप्त नाट्यशास्त्र में ही वर्णित है। मैसूर प्राच्य विद्या संसथान में आदि भरत के नाम से एक ग्रन्थ प्राप्त होता है। जिसे भरताचार्य को ही 'आदिभरत' कहा गया हैं, परन्तु यह ग्रन्थ काफी बाद का है। जिसमें दक्षिण की देशी परम्पराओं का भी संग्रह है। आदिभरत या बृहत भरत के नाम से लिखे गए। किसी भी ग्रन्थ का प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। जो भरत के नाट्यशास्त्र के पहले लिखा गया है। नाट्यशास्त्र जरुर कई स्थानों पर आनुवंश्य लोक लिखे गए है, जो भरत मुनि को परम्परा से प्राप्त हुए।

2:3 नाट्यशास्त्र का स्वरूप

ललित कलाओं के इस भंडार समान ग्रन्थ ने भारत की उदात कला चेतना को बताया गया है। इसी कारण शास्त्रकारों ने नाट्यशास्त्र को नाट्यवेद तथा इसके रचयिता भरताचार्य को मुनि के समान आदर याद किया जाता है। आज प्राप्त नाट्यशास्त्र संस्करण में छत्तीस और कुछ में सैंतीस अध्याय है तथा इसमें छः हजार श्लोकों को स्थान दिया गया है। इसी बात को आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा अपनी सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती व्याख्या करते हुए बताया है।

प्राचीन ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र की दो संहिताओं का वर्णन प्राप्त होता है। एक 'दादशसहस्त्री संहिता' और दूसरी 'षष्ठसहस्त्री संहिता' शारदातनय और उनके बाद के आचार्यों ने

नाट्यशास्त्र के दोनों ही परम्पराओं का वर्णन किया है। इसके मतानुसार नाट्यवेद के बृहत और लघु दो पाठ थे। जिनमें क्रमशः छः तथा बारह हजार व ग्रंथों के साक्ष्य प्राप्त होते है।[(1)] रामकृष्ण कवि के अनुसार दादशसहस्त्री संहिता की रचना बृहत भरत द्वारा लिखा गया। जिसका सार प्रस्तुत करते हुए, भरत मुनि ने छः हजार श्लोकों में नाट्यशास्त्र की रचना हुई। रामकृष्ण कवि ने दादशसहस्त्री संहिता के पाठ को अधिक प्राचीन माना है। राघव भट्ट ने अभिज्ञान शकुन्तला की टीका में दोनों संहिताओं से उद्धरण लिए है।[(2)] अभिनवगुप्त ने छः हजार श्लोकों वाले नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका अभिनव भारती की रचना की। अभिनव के काल तक दोनों पाठों की परम्परा चली आ रही थी।

आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी टीका अभिनव भारती मे नाट्यशास्त्र के षष्ठसहस्त्री पाठ पर ही केन्द्रित करके लिखी गई थी। बहुरूप मिश्र ने दशरूपक की टीका में दादशसहस्त्री और षष्ठसहस्त्रीकार दोनों को ही वर्णित किया गया है। इस दोनों पाठों को करने का करने का कारण भी शारदातनय ने अपने भाव प्रकाशन में पूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत किया है। तदानुसार मूल नाट्यवेद को मनु के आग्रह द्वारा दो भागों में विभाजित किया गया था। जिनमें से एक षष्ठसहस्त्री तथा दूसरी दादशसहस्त्री थी। शारदातनय के मतानुसार ददाशसहस्त्री संहिता की रचना बृहत भरत या आदि भरत तथा सदाशिव भरत के द्वारा हुई थी। ''यमलाष्टक्तन्द'' के कथानुसार नाट्य भेद का विस्तार छतीस हजार श्लोकों में प्रतिपादित किया था। जिसका सार ददाशसहस्त्री में वर्णित किया गया, परन्तु यह विवरण उत्तर काल के किसी भी नाट्यशास्त्रीय विवरण से समानता नहीं रखता, और न ही शारदातनय की किसी भी वर्णन में यह बताया गया है। इस विषय में दूसरा तर्क यह भी दिया जाता है, कि वर्तमान नाट्यशास्त्र को षटसहस्त्री से अलग कहीं भी नहीं दर्शाया गया है। यह बात अलग है कि धनिक जैसे प्रथितयशास्क आचार्य और परवर्ती कई आचर्यों ने नाट्यशास्त्र के जिन पाठों का वर्णन प्रस्तुत करते रहे है। वह बिना किसी संदेह के षटसहस्त्री संहिता से ही लिए जा रहे है। जो वर्तमान में नाट्यशास्त्र का लघु रूप है। जिस पर अभिनवगुप्त ने अपनी टीका अभिनवभारती की रचना की। अभिनवगुप्त ने अपनी टीका अभिनव भारती की प्रस्तावना के

---

(1) एवं द्वादशसहस्त्रेः श्लोके तद्न्ध्त ॥ षडभिः श्लोक सहसत्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रह ॥ / शारदातनय–भावप्रकाशन / पृष्ठ–901 / श्लोक 34–35

(2) अभिज्ञान–शकुन्तला / राघवभट्ट / पृ0–10

दूसरे श्लोक में षटत्रिशक भारत सुश्रमिद विवृण्वन तथा पहले भाग के पृष्ठ संख्या आठ पर "मध्येऽत्र षटत्रिंशदध्यायजयां" अंकित है। जिससे पता चलता है कि अभिनवगुप्त को जिस रूप में भरत कृत नाट्यशास्त्र के बारे में पता चला, उसमें 36 अध्याय रहें होगें।

इसे ददाशसहस्त्री नहीं मानना चाहिए। इसका कारण यह है, कि दशरूपक टीका में बहुरूप मिश्र द्वारा तथा अन्यत्र ददाशसहस्त्री संहिता के कुछ उदाहरण मिलना। म०म० रामकृष्ण कवि ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है, कि ददाशसहस्त्री संहिता बृहत भरत द्वारा लिखा गया। जिसे संक्षिप्त रूप में बताते हुए, भरत ने छः हजार श्लोकों में नाट्यशास्त्र को संकलित किया। पूर्व के ग्रंथों में इस ग्रन्थ का नाम नाट्यवेद था तथा दीर्घ या ददाशसहस्त्री का पाठ ही प्राचीन पाठ था, जिसके कुछ भाग मिले है। अन्य विद्वान श्री रामकृष्ण कवि के इस तर्कों से सहमती नहीं रखते है। उनका मानना है, कि लघु या षटसहस्त्री संहिता का पाठ ही प्राचीन है। अन्य प्रक्षेपों तथा विषय विस्तारों को जोड़कर बड़ा बनाया गया है। परवर्ती पाठ की स्थिति तथा आयाम का तार्किक सहारा देने योग्य बनाता है। इस प्रकार स्पष्ट है, कि भरत मुनि का नाट्यशास्त्र अपने विषय विस्तार के कारण पूर्वकाल से लेकर आज तक विवेचक विद्वानों को आकृष्ट करता चला रहा है। आज भी नाट्यशास्त्र का अध्ययन इसके स्थाई महत्व को देखकर ही जारी है।[1]

2:4 नाट्यशास्त्र के संस्करण

नाट्यशास्त्र के संस्करणों तथा संबंधी कई लेख कई विद्वानों द्वारा लिखे गए, जिनके विषय में कुछ जानकारी इस प्रकार है, जो कि नाट्यशास्त्र कि महत्वता को दर्शाते है। नाट्यशास्त्र के क्रमावार संस्करणों का वर्णन इस प्रकार है–

- **वर्ष 1865** में अमेरिका के एक विद्वान इंडोलाजिस्ड एडवेर्ड हाल ने नाट्यशास्त्र की पाण्डुलिपि को खोजा और अपनी पुस्तक, जो कि धनंजय द्वारा रचित 'दशरूपक' पर लिखी गई थी, उसके परिशिष्ट में नाट्यशास्त्र की इस पाण्डुलिपि को जोड़ा गया था। जिसमें सत्राह से बीस तथा चौतीसवें अध्याय देखने को मिलते हैं।
- **वर्ष 1874** में जर्मनी के एक विद्वान हेयमान ने अपने नाट्यशास्त्र पर लिखे गए, एक लेख में नाट्यशास्त्र की विषय सूची की चर्चा प्रस्तुत की।

(1) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / प्रस्तावना / पृष्ठ–3,4

- **वर्ष 1880** में फ्रांस के एक विद्वान पॉल रेग्नाड ने एक आलोचनात्मक लेख प्रस्तुत किया, जो कि नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय पर आधारित था।
- **वर्ष 1896** में पहली बार किसी भारतीय विद्वान श्री शिव–दत्ता दाधिच और कांशीनाथ पांडुरंगा ने बंबई के निर्णय सागर नामक प्रेस से नाट्यशास्त्र का सम्पूर्ण संस्करण प्रस्तुत किया, जिसमें सैतीस अध्यायों का वर्णन प्राप्त होता है।
- **वर्ष 1898** में नाट्यशास्त्र के 18वें अध्याय को फ्रांस के विद्वान तथा रेग्नाड के शिष्य जानी गाँसेट द्वारा प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1926** में भारतीय विद्वान एम० रामकृष्ण ने सभी प्राप्त 40 पाण्डुलिपि के आधार पर तथा अभिनव भारती की टीका की व्याख्या सहित, अपना संस्कारण प्रस्तुत किया, जिसमें एक से सात तक के अध्यायों को वर्णित किया गया और इसे बड़ैादा संस्कारण या गायकवाड़ अरियंटल इंस्टीट्यूट सीरीज XXXVI की सहायता से प्रकाशित किया तथा इसका दूसरा संशोधित संस्कारण 1956 में प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1929** में बलदेव उपाध्याय और बटुकनाथ शर्मा ने काशी संस्कृत सीरीज के माध्यम से सरस्वती भवन, बनारस मे संगृहीत की गई। इसे दों पाण्डुलिपि के आधार पर नाट्यशास्त्र के सम्पूर्ण 36 अध्यायों का एक मूल पाठ को प्रकाशित किया गया, जिसका दूसरा संस्कारण 1980 में प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1936** में गायकवाड़ अरियंटल इंस्टीट्यूट सीरीज LXVIII के सहायता से 8 से 18 तक के अध्यायों को एम० रामकृष्ण द्वारा दूसरा संस्कारण प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1943** में निर्णय सागर बंबई के द्वारा नाट्यशास्त्र के सैंतीस अध्यायों को केदारनाथ शर्मा के सम्पादन के साथ, काव्यमाला सीरीज 42 के माध्यम से प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1951** में 'द रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' ने बिबिलियोथिका इण्डिका सीरीज 272 के माध्यम से डॉ० मनमोहन घोष के द्वारा नाट्यशास्त्र का संस्कृत से अंग्रेजी मे (अनुवाद) का प्रथम भाग प्रस्तुत किया तथा इसी का संशोधित भाग वर्ष 1966 में प्रकाशित किया गया।

- **वर्ष 1953–1954** में चौखम्भा संस्कृत संस्थान, बनारस के माध्यम से रामगोविंद शुक्ल ने पहले दो अध्यायों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1954** में गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज के द्वारा तीसरा भाग प्रकाशित किया गया। इस भाग मे 19 से 27 तक के अध्यायों को एम० रामकृष्ण कवि के द्वारा अभिनव भारती की टीका के साथ प्रस्तुत किया गया।
- **वर्ष 1954** में साहित्य निकेतन कानपुर के द्वारा प्रारम्भ के तीन अध्यायों का अनुवाद हिन्दी में भोलानाथ शर्मा के सम्पादन मे प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1956** में गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज बड़ौदा के माध्यम से के० एस० रामस्वामी शास्त्री के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1956** डॉ० मनमोहन घोष के द्वारा नाट्यशास्त्र के 28 से 36 तक के अध्यायों को 'द रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के माध्यम से प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1958** गोविंद चंद्र राय के द्वारा नाट्यशास्त्र के नाट्य मंडप के विधान को हिन्दी भाषा में (अनुवाद) कर काशी मुद्रणालय, बनारस से प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1960** में लखनऊ से आरंभिक सात अध्यायों का हिन्दी मे अनुवाद प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी द्वारा प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1960** नाट्यशास्त्र के पहले, दूसरे और सांतवे अध्याय का हिन्दी अनुवाद आचार्य विश्वेश्वर के द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1961** द्वितीय खंड के रूप मे डॉ० मनमोहन घोष के द्वारा 'द रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के माध्यम से नाट्यशास्त्र के 28 से 36 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1964** गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज के द्वारा चौथे भाग को प्रकाशित किया गया। इस भाग मे 28 से 37 तक के अध्यायों को एम० रामकृष्ण कवि तथा जे० एस० पदे के द्वारा अभिनव भारती की टीका के साथ प्रस्तुत किया गया।

- **वर्ष 1964** में ही मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली से प्रकाशित गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज अर्थात् बडौदा संस्कारण के मुख्य भाग पर आधारित भूमिका का अनुवाद डॉ० रघुवंश द्वारा प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1967** में कलकत्ता के मनीषा ग्रंथालय के सहयोग से डॉ० मनमोहन घोष द्वारा 1 से 27 तक के अध्यायों को संपादित किया गया तथा 1951 मे प्रकाशित भाग को संशोधित कर 1967 दूसरे खंड के रूप मे प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1967** में दिल्ली से पहले दो अध्यायों का हिन्दी अनुवाद डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत किया गया।
- **वर्ष 1971** में पं० मधुसूदन शास्त्री ने नाट्यशास्त्र के 1 से 7 तक के अध्यायों का हिन्दी अनुवाद अभिनव भारती की टीका सहित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1972** में चौखम्भा संस्कृत संस्थान बनारस से कालिदास अकादमी उज्जैन के प्रो० बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अपना पहला हिन्दी अनुवाद भाग प्रस्तुत किया गया, जिसके प्रथम भाग में 1 से 7 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1975** में पं० मधुसूदन शास्त्री ने नाट्यशास्त्र के 8 से 18 तक के अध्यायों का हिन्दी (अनुवाद) अभिनव भारती की टीका सहित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ।
- **वर्ष 1978** प्रो० बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अपना दूसरा हिन्दी अनुवाद भाग प्रस्तुत किया गया। जिसके प्रथम भाग में 8 से 19 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1978** में चौखंभा सुरभारती बनारस से सत्यप्रकाश शर्मा द्वारा आरंभिक दो अध्यायों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया।
- **वर्ष 1978** में बलदेव उपाध्याय तथा बटुक नाथ शर्मा द्वारा श्री काशी संस्कृत ग्रंथमाला क्रमांक 60 के अंतर्गत सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र को अपने द्वितीय संस्कारण मे प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1981** में डॉ० आर० एस० नागर द्वारा काव्यमाला, बड़ौदा सीरीज तथा डॉ० मनमोहन घोष के अनुवादों की सहायता से दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया।

- **वर्ष 1983** प्रो० बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अपना तीसरा हिन्दी अनुवाद भाग प्रस्तुत किया गया। जिसके प्रथम भाग में 20 से 27 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया।
- **वर्ष 1984** में प्रो० बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अपना पहला हिन्दी अनुवाद का संशोधित रूप प्रस्तुत किया गया। जिसमें प्रथम भाग में 1 से 7 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया गया।
- **वर्ष 1985** में प्रो०बाबूलाल शुक्ल शास्त्री द्वारा अपना चौथा हिन्दी अनुवाद भाग प्रस्तुत किया गया जिसके 28 से 36 तक के अध्यायों को प्रकाशित किया

इस प्रकार इतने संस्करणों की संख्या देख कर यह ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्र भरत द्वारा रचित एक अमर कृति है। जिसका बहू–आयामी उपयोग इस ग्रंथ कि महत्वता को दर्शाता है। यह एक विस्तृत तथा श्रेष्ठ कृति है। आधुनिक नाट्य तथा संगीत के लिए यह एक महान ग्रंथ है, जिसका प्रयोग निरंतर बढता जा रहा है।

2:5 नाट्यशास्त्र के समस्त अध्यायों का संक्षिप्त विवरण

नाट्यशास्त्र के समस्त अध्यायों को शोधार्थी द्वारा अध्ययन करने से निम्नलिखत संक्षिप्त वृत्त विषय की अवश्यकता अनुसार प्रस्तुत करने का शोधार्थी का प्रयास है, जो कि इस प्रकार हैं।

2:5:1 मंगलाचरण

सार– प्रथम अध्याय में नाट्यशास्त्र के आरंभ के साथ सभी देवताओं की स्तुति नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति आदि का वर्णन किया गया है। शोधार्थी द्वारा अध्ययन के पश्चात्, इस अध्याय के सार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। देव स्तुति व वंदना को इस अध्याय मे रखा गया है।

नाट्यशास्त्र के पहले अध्याय का अराम्भ ब्रह्माजी और महादेव भगवान की स्तुति के साथ होता हैं। नाट्यशास्त्र को नाट्य तथा नृत्य विषय का प्रतिष्ठापक माना जाता है। ब्रह्माजी द्वारा वेदों से सार को एकत्र कर नाट्यशास्त्र को चारों वेदों के समान गरिमा मापते हुए, एक ऐसा वेद नाट्यवेद या पंचमवेद के रूप में स्थापित किया, जो कि सभी के द्वारा समान रूप से अध्येय था (इस नाट्यवेद को ही नाट्यशास्त्र माना है)। ब्रह्माजी द्वारा ऋग्वेद से पाठ,

यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत और अथर्वेद से रस के सार को एकत्र कर नाट्य सम्बन्धित त्तवों को एकत्र किया। नाट्यशास्त्र के प्रयोग व उसकी उपादेयता को ध्यान में रखते हुए, इसके आरम्भ में ऋषियों द्वारा पांच प्रश्नों को पूछा गया। प्रथम प्रश्न–नाट्यशास्त्र की रचना किस उद्देश्य से की गई, यह क्यों बनाया गया? दूसरा प्रश्न– इस नाट्य वेद नाट्यशास्त्र को कितने भागों में विभक्त किया गया है? तीसरा प्रश्न– इस ग्रन्थ में कितने अंग है? चौथा प्रश्न नाट्य के अंगों को किस प्रकार समझा जा सकता है? पांचवां एवं अंतिम प्रश्न नाटक के अंगो को प्रदर्शित करते हुए, नाट्य का प्रयोग किस प्रकार करना होगा? नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा नाट्यवेद के सम्बन्ध में उत्सुकता वश कई प्रश्न पूछे गए, कि नाट्य वेद की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? ऋषियों एवं मुनियों द्वारा आदर और सम्मान सहित भरत मुनि से यह प्रश्न किया– हे ब्रह्मण! आपके द्वारा रचा गया, जो पूर्णता वेद के समान रचा गया है। इस नाट्यवेद को कैसे उत्पन्न किया गया? किस उद्देश्य से रचना हुई? ब्राह्मण देव इस ग्रन्थ के विषय में सभी त्तवों को स्पष्ट तौर से बताया कि इस नाट्यवेद में कितने अंग कहे गए है? इसका क्या प्रमाण है तथा इसके उपयोग के विषय में भी बताये कि किस प्रकार इसका प्रयोग होगा?

इन प्रश्नों के उत्तर में भरत मुनि ने कहा कि यह ग्रन्थ नाट्यशास्त्र ब्रह्माजी के द्वारा वर्णित है। यहाँ ब्रह्माजी द्वारा वर्णित नाट्यशास्त्र के शब्दों के अर्थ की व्याख्या की गई है, भरत मुनि ब्रह्माजी के इस शास्त्र (नाट्यशास्त्र) का निरूपण करने का संकल्प करते है, कि मैं (भरत मुनि) नाट्यशास्त्र का प्रवचन करूंगा, जो कि नाट्यशास्त्र उपदेश के रूप में ब्रह्माजी द्वारा मुझे बताया गया है। भरत मुनि कहते है कि हे ब्राह्मणों! इस ग्रन्थ हेतु, ब्रह्माजी ने ऋग्वेद का पाठ किया, यजुर्वेद द्वारा अभिनय सामवेद से गीत और अथर्वेद द्वारा रस नामक त्तवों के सार को एकत्र कर भगवान ब्रह्माजी द्वारा वेदों और उपवेदों को सम्बद्ध कर नाट्यशास्त्र की रचना की नाट्यशास्त्र की रचना के बाद ब्रह्माजी ने इंद्र से कहा कि इसका अन्य देवताओं द्वारा प्रचार करो अर्थात् जो अपनी विद्याओं में निपूर्ण एवं श्रमशील हो जिससे इस शास्त्र का प्रचार तम्हारे द्वारा सम्भव हो ब्रह्माजी के वचन सुनकर इंद्र ने अपने करकमलों को जोड़ क्षमा याचना करते हुए, कहा कि हे देव! इस नाट्यशास्त्र के कर्म को ग्रहण करने की योग्यता देवलोक में नहीं है, इस वचन को सुन ब्रह्माजी मुझसे (भरत मुनि) से बोले कि समस्त पापों से रहित! तुम सौ पुत्रों वाले हो तुम इस नाट्यशास्त्र के प्रणेता बनो। इस प्रकार ब्रह्माजी की

आज्ञा से नाट्य वेद की शिक्षा स्वयं प्राप्त कर मैंने अपने पुत्रों को भी इस ग्रन्थ की शिक्षा दी और उसका तात्विक पक्ष और उपयोग की विधि भी उन्हें विधि पूर्वक समझायी, हे ब्रह्मणों मैंने नाट्य प्रयोग में भारती, सात्वती तथा आरभटी नाकाम तीन वृतियों को संग्रहित कर उसका निर्माण किया।

2:5:2 प्रेक्षगृह के लक्षण

सार– भरत मुनि द्वारा नाट्य के मंडप को तैयार करने की विधि तथा उससे संबन्धित लक्षणों, नाट्य गृह के प्रकार, उसका माप, आदि को अध्याय के परिवेदन के पश्चात् शोधार्थी द्वारा रखने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय सम्बन्धित विषय का विधि पूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् तथा रंग पूजा सम्बन्धी प्रेरणा ग्रहण करने के बाद द्वितीय अध्याय के अंतर्गत नाट्य मंडप को बनाने की विधि तथा इसके नेपथ्यगृह, रंगपीठ, मतवारणी, स्तम्भविधान, दारूकर्म आदि का विस्तृत विवेचन है। भरत मुनि ने नाट्य को प्रदर्शित करने के लिए प्रेक्षागृह की आवश्यता का वर्णन करते हुए, बताया है कि बुद्धिमान विश्वकर्मा जी द्वारा इस प्रेक्षागृह के विषय में विचार कर शास्त्रानुसार अर्थात् शास्त्रों का अध्ययन करते हुए, विषय का परिशीलन करते है और नाट्य मंडप के तीन प्रकारों का सन्निवेश (आकार) कल्पित किया गया है– **1)** विकृष्ट **2)** चतुरश्र **3)** त्रयश्र और ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रमाण अर्थात् माप बताये है। विश्वकर्मा जी के द्वारा विचार कर इन समस्त क्रम को एकत्र कर मिश्रित करने के कारण उन्हें सक्षम विशेषण दिया गया है। धमिता प्रश्न– प्रेक्षागृह के आकार एवं परिमाण के अनुसार तीन प्रकारों को ही क्यों बताये गए है। उत्तर शास्त्रतः उसका कारण यह है कि शास्त्र द्वारा ही इन वर्णित प्रकारों के विषय में ज्ञात होता है, शास्त्र का प्रमाणय नहीं होता है। विश्वकर्मा जी द्वारा लक्षण एक प्रेक्षागृह के बताये है। इस विषय में जो प्रमाण है, उन्ही के आधार पर विभाजन है आणु, रज, बाल, लिक्षा, जूं, जौ, अंगुल, हस्त एवं दण्ड सभी प्रेक्षागृह के परिमापक अंग है। इनका वर्णन इस प्रकार है– आठ अणुओं की जितनी मोटाई होती है, वह एक रज के बराबर होती है, आठ रजों की मोटाई के समान एक बाल होता है, आठ बालों की मोटाई के समान एक लिक्षा, आठ लिक्षा की मोटाई के समान एक जूं, आठ जूं के सामान एक यव और आठ यव के समान एक अंगुल और चौबीस अंगुलों का एक हस्त चार हस्त के समान दण्ड माना जाता

था। हस्त एवं दण्ड के अनुरूप ही ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ को समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त नाम के अन्य साक्ष्य भी प्राप्त होते है परन्तु भरत मुनि द्वारा ऋषियों को इस सन्दर्भ में वर्णित करते हुए, इन साक्ष्यों पर बल दिया है। इसके अलावा प्रेक्षागृहों के नाप विकृष्ट प्रेक्षागृह, भूमि विभाग, रंग गृह–विभाग, स्थापना कार्य, भीतिकर्म, स्तम्भों की स्थापना, मतवारणी, रंगपीठ, रंगशीर्ष, दारू–कर्म लेप, चित्रकर्म, चतुरस्त्र गृह के लक्षण, त्रयश्रगृह के लक्षण इस प्रकार बताई गई विधियों के अनुसार नाट्य–गृह का विधिवत निर्माण किया है। भरत के अनुसार कुशल विश्वकर्मा जी ने लौकिक समागृह या प्रेक्षागृह के सम्बन्ध में विचार करके शास्त्र के अनुसार उसके आकार को तीन प्रकार से निर्धारित किया है। उपर्युक्त नाट्य गृहों में मनुष्यों के लिए जो हो उसको लम्बाई 64 हाथ और 32 हाथ होनी चाहिए।

2:5:3 रंग देवताओं की पूजा

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा नाट्य से पूर्व नाट्य संबंधी देवों की पूजा और सभी देवों की उनके विधान के साथ पूजन विधि का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के आध्यान के पश्चात् शोधार्थी द्वारा इस अध्याय के संक्षिप्त वर्णन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

तृतीय अध्याय के अंतर्गत नाट्यमंडप से सम्बन्धित धार्मिक क्रियाओं का निरूपण करते हुए, विभिन्न देवताओं की पूजा–अर्चना तथा उनसें प्राप्त होने वाले फलों का निरूपण किया है। तृतीय अध्याय से नाट्यमंडप के निर्माण के बाद देवगणों की पूजा का विधान विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, क्योंकि देवपूजा के बिना नाट्य प्रयोग को प्रस्तुत करना उचित नहीं माना जाता है, तथा भरत मुनि द्वारा भी पूजा–अर्चना का विधान भी बताया गया है। नाट्यमंडप में धार्मिक कार्यो का वर्णन करते हुए, समस्त देवों को नमस्कार करके सम्पन्न किया जाना चाहिए। सभी लोकों को उत्पन्न करने वाले महादेव, समस्त विश्व के पितामह ब्रह्माजी, भगवान विष्णु, इन्द्रदेव, कार्तिकेय जी, माता सरस्वती, माता लक्ष्मी, रिद्धि–सिद्धि, मेधा, स्मृति, धृति, चन्द्र, सूर्य, वायु, लोकपाल, अश्वनी, कुमार, मित्र तथा अग्नि की वंदना की गई है।

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत नाट्य मंडप में सम्पादित की जाने वाली आवश्यक धार्मिक क्रियाओं के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है, क्योंकि किसी भी नाट्य मंडप का निर्माण व नाट्य बिना धार्मिक पूजा अर्चना व देवताओं के आशीष के बिना फलीभूत नहीं हो सकता है। प्रस्तुत

अध्याय में नाट्यमंडप के निर्माण का पश्चात् देवताओं आदि की पूजा अर्चना व उनको मंडप में स्थापित करने की विधि की पूर्ण चर्चा की गई है। आरंभिक श्लोकों के अंतर्गत निर्माण के पश्चात् मंडप की शुद्धी हेतु ब्राह्मण व गायों के निवास की चर्चा की गई है और इसके पश्चात् सभी देवों को हाथ जोड़कर विनती करते हुए, उनका आवाहन करने की विधी का वर्णन कर महादेव, ब्रम्हा, विष्णु, इंद्र, गृह, ऋतुओं, राशियों, मुनियों, देवगणों, गन्धर्वों, अप्सराओं आदि के आवाहन के साथ–साथ भूत, पिशाच, राक्षसों, दैत्यों आदि को भी आमंत्रित किया गया है, और इन सभी के आवाहन के पश्चात् सभी को नाट्य वृद्धि के कल्याण हेतु निवेदन किया गया है और लाल चन्दन, मौली, लाल पुष्प, फल आदि द्वारा अर्चना विधि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इसके पश्चात् वास्तु के अनुसार सभी देव आदि को स्थापित करने का विधान बताया गया है और उसी के अनुरूप उनकों भोग अर्पित करने के प्रावधान का वर्णन किया गया है। प्रत्येक देव और दैत्यों को उसी की पसंद के अनुसार बलि अर्पित की गई है और इसके बाद देवों से उस अर्पित भोग को ग्रहण करने की विनती की गई है। देव आदि से आशीष प्राप्त कर शत्रुओं का नाश कर समस्त देवताओं से रक्षा की स्तुति की गई है। महादेव, विष्णुप्रिय लक्ष्मी, माता सरस्वती, समस्त शक्तियों, देवों, धूमकेतु, समस्त ग्रहों, महागणों, सभी पितरों, पितृगणों, नारद, तम्बूर, विश्वासु, यम, मित्र, सर्पों, जल के स्वामी वरुण, समुद्र, नदियों, पक्षियों, यक्षों, लोकपाल सभी को अर्पित बलि को ग्रहण करने की स्तुति के विधान को बताया है। रंगमंच पर घट स्थापित करने की विधि तथा उसमे स्वर्ण डालने का प्रावधान वर्णित किया गया है। सभी देवताओं आदि का क्रमानुसार पूजन करने की विधि का वर्णन किया गया है। सभी देव आदि को उनके अनुसार वस्त्र प्रदान किये जाते है, इसके पश्चात् गंध, धुप, भोग द्वारा उनकी पूजा अर्चना करने की विधि का वर्णन प्राप्त होता है। जजर्र एक प्रकार का लट्ठ है, जिसमें चार गांठे होती है और उसमे पांच पोरे होती है, जिसकी प्रत्येक पोर पर देवताओं को स्थान दिया जाता है। उनके क्रम के अनुसार लट्ठ पर उनके वस्त्र को बांधा जाता है और सभी देवों से कल्याण व रक्षा के लिए स्तुति की जाती है। उस जजर्र से यह विनती की जाती है कि कार्य में विघ्न उत्पन्न करने वाले सभी शत्रुओं का नाश करो और उन्नति प्रदान करो तथा उस जजर्र को भोग व बलि अर्पित कर मंत्रोच्चारण के साथ हवन किया जाता है। हवन के पश्चात उस अग्नि व धुएं को चारों दिशा में घुमाया जाता है। इसके बाद

सभी वाद्यों की पूजा अर्चना की जाती है, ताकि वह समस्त उच्च गुणों से अलंकृत हो जाये। समस्त पूजा के विधिपूर्वक सम्पन्न होने के पश्चात् उस घट को नाट्याचार्य द्वारा फोड़ दिया जाता है और उसके एक प्रहार में न फूटने पर शत्रु के हावी होने का भय होता है और घट के फूट जाने पर शत्रुओं का नाश होता है और फिर रंगमंच को दीपक द्वारा प्रकाशित किया जाता है। शंख, दुंदुभी, मृदंग के वादन द्वारा रंगभूमि युद्ध (एक प्रकार का दंगल) होता है और उसमें किसी भी प्रकार का कटना, चोट लगना आदि सफलता को सूचित करता है। सफल पूजा द्वारा नगर के बालक से लेकर वृद्ध तक सभी के लिए शुभ होता है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में रंगदेवता के पूजन को विधि बताई गई है और इसे विधिपूर्वक करना आवश्क बताया गया है और रंगदेवताओं के पूजन विधि के वर्णन के द्वारा तृतीय अध्याय समाप्त होता है।

2:5:4 अमृतमंथन

सार– यह अध्याय देव आदि का प्रिय अध्याय माना जाता हैं। इस अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा अमृतमंथन नाट्य को रूप किया गया, जिसको इस अध्याय के अंतर्गत स्थान दिया गया है तथा इसे ही प्रस्तुत करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा आध्यान किया गया है। जो कि इस प्रकार है–

चतुर्थाध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा अमृतमंथन का नाट्य देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत करने का वर्णन किया गया है। यह एक ऐसी प्रस्तुती है, जो देवताओं को उत्साहजनक और प्रिय लगती है। इसके साथ ही यह समवकार धर्म, अर्थ और काम का प्रदाता है। समवकार के प्रयोग से देवता एवं दानव सभी इसके प्रयुक्त होने वाले कार्यों एवं भावों द्वारा अत्यंत संतुष्ट और प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् कमल द्वारा ब्रह्माजी के आदेशानुसार त्रिपरदाह को महादेव के सम्मुख करने तथा महेश्वर के आदेशानुसार तण्डु द्वारा भरत को अंगहार, करण तथा रेचाकों का ज्ञान करवाने का वर्णन है। ताण्डव नृत्य के उत्पन्न होने के साथ नृत्य के लास्यादि प्रभेद का विवरण देकर, उसके करण अंगहार आदि का विवेचन दिया गया है। सबसे पहले इस क्रम में भरत मुनि ने नृत्य का उद्‌भव का भी विवरण दिया है। जब त्रिपरदाह नाम के डिम का प्रयोग भरत मुनि ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से शिव जी के सम्मुख हिमाचल पर्वत पर प्रस्तुत किया, जिसे देखकर शिव जी बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न नाट्यशास्त्र की प्रसंशा की और उनसे कहा कि मैंने संध्याकालीक नृत्य करने के समय कई प्रकार के करणों और अंगहारों से विभूषित नृत्य का स्मरण किया है। इस नृत्य को आप अपने पूर्वरंग

में संयुक्त कीजिए, जो नृत्य के संयोग से नाम धारण करेगा। महेश्वर के यह वचन सुन कर ब्रह्माजी ने उनके प्रति सहमति प्रकट की एवं भरत मुनि से अंगहारों को प्रयोग में लाने के लिए कहा, तब भगवान महादेव ने तण्डु ऋषि को बुलाया और कहा कि अंगहारों के प्रयोग की विधिवत विधि भरत मुनि को बताओ, तण्डु ऋषि के द्वारा विधि पूर्वक शिक्षा प्रदान किये जाने के कारण भगवान शिव के इस अंगहार का नाम तांडव रखा और यह इसी नाम से प्रसिद्ध भी हुआ। इस अध्याय के अंतर्गत करणों के आश्रयभुत प्रयोगों का वर्णन प्राप्त होता है। भरत मुनि द्वारा इस अध्याय में एक सौ आठ करणों का उनकी विभिन्न मुद्राओं से साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, तथा यह वर्णन अनके परवर्ती संगीत नाट्य–ग्रंथों में प्राप्त विवेचन के साथ प्राप्त होता है। जिसका आधार पर भरत मुनि का नाट्यशास्त्र ही है।

2:5:5 पूर्वरंग विधान

सार– इस अध्याय के अंतर्गत नाट्य आरंभ होने से पूर्व के विधानों वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसे शोधार्थी द्वारा अध्ययन के पश्चात प्रतिवेदन के रूप मे प्रस्तुत किया है।

पंचम अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा नाट्य के प्रयोग में आरंभ में प्रस्तुत होने वाले पूर्वरंग विधान नान्दी प्रस्तावना एवं ध्रुवाओं के संगोपांग का वर्णन किया है। पूर्वरंग के स्वरूप आदि को ध्यान से देखने पर यह प्रतीत होता है, कि पूर्वरंग नाट्य–प्रयोग के पहले की चरम परीक्षा स्थली है। भरत मुनि ने नाट्य–प्रयोग के आरंभ के पूर्व अनेकों अनुष्ठानों का विधान बताते हुए, यह स्पष्ट किया है कि इसके अंतर्गत मुख्य रूप से वाद्य, गीत, नृत्य एवं पाठ के अंश आदि का प्रयोग यवनिक के भीतर व बहार किया जाता है। पूर्वरंग शब्द के उद्भव को ''पूर्वोरंगे इति पूर्वरंग'' इस प्रकार समास करना चाहिए। नाट्यप्रयोग के पूर्व ही उसके सफलतापूर्वक पूरे होने के लिए किये जाने वाले सम्पूर्ण कार्य–कलाप पूर्वरंग में समाविष्ट है। प्रत्याहार आदि अंगों के पूर्ण उपयोग से गायन आदि सम्पूर्ण साधन जुटाने पर नाट्य–प्रयोग सफल हो सकता है, इसलिए पूर्वरंग का अर्थ प्रयोग के पूर्व होने वाले आवश्यक कार्य।

2:5:6 रस शास्त्र

सार– भरत मुनि द्वारा रस के पूर्ण विवरण को इस अध्याय मे बताया गया है। इसमें रस भाव के साथ–साथ संबंधित देव तथा रंगों का भी भावों और स्थायी भावों सहित व्याख्या प्रस्तुत की गई है। शोधार्थी के प्रतिवेदन द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

षष्टम अध्याय रस पर आधारित है। इसके पूर्व के अध्याय में पूर्वरंग के विधान को विधिपूर्वक बताया गया है। प्रस्तुत अध्याय में ऋषियों द्वारा रस तथा भाव सम्बन्धित विषय में पांच प्रश्न पूछे गए है। जिन प्रश्नों के उत्तर भरत मुनि से पूछे, जिसके उत्तर इस अध्याय में भरत मुनि द्वारा प्रस्तुत किये गए है। जिसमें से कुछ प्रश्न इस प्रकार है, कि जिसे रस कहा गया है, उसे रस क्यों कहा गया है? भाव क्या है और वह किसे भावित करते है? इन प्रश्नों को सुनकर भरत मुनि ने इसके उत्तर ऋषि–मुनियों को दिए। जिसके अंतर्गत संग्रह, कारिका और निरुक्त को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया। साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि इस नाट्य को स्पष्ट तो किया जा सकता है, परन्तु इसकी पूर्ण प्राप्ति करना सम्भव नहीं है, फिर भी इसकी व्याख्या करता हूँ। यह सम्पूर्ण अध्याय नाट्यशास्त्र का रस को समर्पित है। इस रसाध्याय के अंतर्गत रस का विवेचन किया गया है। जिसके उत्तर में भरत मुनि द्वारा रसों के नामकरण का आधार तथा संग्रह, कारिका तथा निरुक्त का आधार एकत्र कर नाट्य संग्रह के विवरण के साथ रस का वर्णन करते है। इसी आधार पर रस निष्पत्ति, रसों के भावों आदि से पारम्परिक सम्बन्ध, रसों के देवता तथा रस और उनके स्थाई भावों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समीक्षाशास्त्र को भरत द्वारा निर्मित रस–सिद्धांत एक अतुलनीय भेंट है, और भरत मुनि रस के आदि आचार्य माने जाते है, परन्तु नाट्यशास्त्र में ऐसा भी वर्णन मिलता है, कि नाट्यशास्त्र से पहले भी रस मीमांसा की परम्परा विद्यमान थी।

नाट्यशास्त्र में रस तथा भावों के विवेचन पर भरत मुनि ने अपने से पूर्व के आचार्यों के आनुवंश श्लोक तथा आर्याएं अपने विचारों के अनुमोदन में वर्णित की, परन्तु सिद्धांत के रूप में सबसे पहले रस की व्याख्या भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से ही प्राप्त होती है। इस नाट्य–प्रसंग में रस का निरूपण किया गया है। भरत मुनि आज के काव्य और नाट्य के विभेद को स्वीकार नहीं करते है। उनका मत है, कि रस नाटक का धर्म है और अभिनयों के द्वारा सामाजिक चीजों में रस की निष्पत्ति करना। नाटक का मुख्य उद्देश्य भरत मुनि द्वारा नाटक के सन्दर्भ में जैसा रस का निरूपण किया गया हैं। वह मानव मन मस्तिष्क के सूक्ष्म विश्लेषण को पुर्णतः प्रस्तुत करने वाले आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्र तथा उसकी सम्प्रस्त उपलब्धियों से आश्चर्यजनक समानता रखता है। डॉ० ए० बी० कीथ अपने ग्रन्थ संस्कृत नाटक में व्याख्या की है कि भारतीय नाट्यशास्त्र में सबसे अधिक मौलिक एवं मनोहारी भाग रस है। रस के क्रमिक विकास से समाजिक ह्दय में रसानुभूति कराना नाटक का मुख्य

उद्देश्य है[1], रस के विषय में भरत मुनि द्वारा कहा गया है, कि **"नहि रसा दृते कश्चिदण्यर्थः प्रवर्तते"** अर्थात् बिना रस ज्ञान के किसी भी नाट्योक्तविभवादि को जान्ना कठिन होगा। रस के विषय में चर्चा करते हुए, भरत मुनि द्वारा संग्रह, कारिका और निरुक्त के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई है। संग्रह के बारे में बताया गया है, कि सूत्र और भाष्य का जो पूर्ण अर्थ प्राप्त होता है। उसके लघु कथन को विद्वानों द्वारा संग्रह कहा गया है, इसके ग्यारह भेदों की जानकारी दी गई है, जो कि इस प्रकार है रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवित्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंग। कुछ विद्वानों द्वारा इसके तेरह भेद भी माने गए है। इसी प्रकार सूत्र रूप में जब किसी अर्थ को ज्ञात किया जाता है, तो उसे कारिका कहा है और जब व्याकरण और कोष के अनुरूप अर्थ निहित हो, तब उसे निरुक्त कहा गया है। इसके पश्चात् रस के विषय में दीर्घ चर्चा करते हुए, भरत मुनि द्वारा रसों की संख्या, तथा उनके नामों की व्याख्या की गई है। भरत द्वारा आठ रसों का वर्णन प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है।

श्रृंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकः।
विभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्चे रसाः स्मृताः।।[2]

अर्थात् (1) श्रृंगार, (2) हास्य, (3) करुण, (4) रौद्र, (5) वीर, (6) भयानक, (7) वीभत्स तथा (8) अद्भुत का वर्णन किया है। इसके पश्चात् इस अध्याय के अंतर्गत रस के स्थायी भाव, संचारी भाव तथा सात्विक भावों को वर्णित किया है। स्थायी भाव के विषय में इस प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है–

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।।[3]

अर्थात् **1)**रति, **2)**हास, **3)**शोक, **4)**क्रोध, **5)**उत्साह, **6)**भय, **7)**जुगुप्सा और **8)**विस्मय नामक आठ स्थायी भाव बताया गए है। इसके बाद तैंतीस संचारी भावों का वर्णन मिलता है।

संचारी भावों के नाम इस प्रकार है[4]–

1. निर्वेद	**2.** ग्लानि	**3.** शंका	**4.** असूया	**5.** मद	**6.** श्रम
7. आलस्य	**8.** दैन्य	**9.** चिन्ता	**10.** मोह	**11.** स्मृति	**12.** धृति

---

(1) कीथ डॉ० ए० बी०/संस्कृत नाटक/पृ0–336
(2) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय 6 / श्लोक–16
(3) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय 6 / श्लोक–18
(4) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय 6 / श्लोक–19

13. व्रीडा	**14.** चपलता	**15.** हर्ष	**16.** आवेग	**17.** जडता	**18.** गर्व
19. विषाद	**20.** औत्सुक्य	**21.** निद्रा	**22.** अपस्मार	**23.** सुप्त	**24.** प्रबोध
25. आमर्ष	**26.** अर्वाहत्था	**27.** उग्रता	**28.** मति	**29.** व्याधि	**30.** उन्माद
31. मरण	**32.** त्रास	**33.** वितर्क			

इसके पश्चात् रस सम्बन्धित आठ सात्विक भावों की व्याख्या की गई है–**1.** स्तम्भ, **2.** स्वेद, **3.** रोमांच, **4.** स्वरभंग, **5.** वेपथु, **6.** वैवर्ण्य, **7.** अश्रु तथा **8.** प्रलय। नाट्य आधारित अभिनय के चार प्रकार माने गए है, जो कि आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक है। इन सभी का वर्णन नाट्यशास्त्र के रसाध्याय में प्राप्त होता है। रस अध्याय के अंतर्गत नाट्य सम्बन्धित सभी त्तवों का वर्णन तथा सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर भरत मुनि द्वारा विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त नाट्य प्रयोग चार वृत्तियों पर निर्भर करता है। भारती, सत्तवती, कौशिकी और आरभटी। इस अध्याय के अंतर्गत शरीर व वाद्यों से उत्पन्न होने वाले स्वरों के प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है, षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। इय अध्याय में वाद्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें त्ता्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर के अंतर्गत आने वाले वाद्यों का विस्तार से वर्णन मिलता है।

ध्रुवा गान के प्रकार रस निरूपण की पूर्ण व्याख्या प्राप्त होती है, क्योंकि नाट्य में रस की निष्पत्ति के बिना नाट्य की कल्पना को अधूरा माना जाता है। भरत द्वारा रस निष्पति के सिद्धांत को वर्णित करने के पश्चात् रस के विषय में रस सम्बन्धित कई सिद्धांत अलग–अलग विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किये गए, जैसे भट्टलोल्ट के द्वारा उत्पत्तिवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया, श्री शंकुक द्वारा अनुमतिवाद का सिद्धांत, भट्टनायक द्वारा भुक्तिवाद, और अभिनवगुप्त के द्वारा अभिव्यक्तिवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया। ऋषियों को अपने इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् अन्य प्रश्न जिज्ञासा से उत्त्पन्न हुए और भरत मुनि से प्रश्न किया कि रस कौन सा पदार्थ है और इसका आस्वादन किस प्रकार किया जा सकता है, या किस प्रकार सम्भव है? इसका उत्तर भरत मुनि ने देते हुए स्पष्ट किया कि जैसे किसी खाने–पीने की चीज स्वाद ग्रहण करने पर चित्त में प्रसन्नता के भाव उत्पन्न होते है।

उसी प्रकार अभिनय आदि के देखने व महसूस करने के पश्चात् अन्तः भाव में जो सुख व चित्त को जो सुकून व प्रसन्नता होती है। वही इस रस का आस्वादन है। इस प्रकार भरत द्वारा नाट्य के अंतर्गत रस की व्याख्या को स्पष्ट किया गया है। इसके पश्चात् यह भी प्रश्न

ऋषियों द्वारा पूछा गया कि रस भाव से उत्पन्न है या भाव रस से? इसके उत्तर में भरत मुनि ने व्याख्या प्रस्तुत की कि भाव अभिनय आदि के संयोजन से ''रस'' को उत्पन्न करते है, एक प्रकार से अभिनय के अंतर्गत यह एक दूसरे के पूरक माने जाते है तथा रस को आधार स्वीकारा गया है, जिससे भिन्न–भिन्न भावों का सर्जन होता है। इसके पश्चात् रस की उत्पत्ति का वर्णन उसके वर्ण, देवता आदि की व्याख्या की गई है। मुख्य चार रसों से आठ रसों की उत्पत्ति को स्वीकारा गया है। श्रृंगार से हास्य रस, रौद्र रस से करुण रस, वीर रस से अद्‌भुत रस तथा वीभत्स रस से भयानक रस की उत्पत्ति मानी गई। इसके बाद रस के वर्णों की व्याख्या प्राप्त होती है

1. श्रृंगार रस	श्याम वर्ण	**5.** वीर रस	गौर वर्ण
2. हास्य रस	श्वेत वर्ण	**6.** भयानक रस	कृष्ण वर्ण
3. करुण रस	कपोत वर्ण	**7.** वीभत्स रस	नील वर्ण
4. रौद्र रस	रक्त वर्ण	**8.** अद्‌भुत रस	पीत वर्ण

इसके पश्चात् इन सभी रसों के देवता भी निर्धारित किये गए है, जो कि इस प्रकार हैं– भगवान विष्णु को श्रृंगार रस के देवता, प्रथम गण को हास्य रस के देवता, रूद्र को रौद्र रस के देवता, यम को करुण रस के देवता, महाकाल को वीभत्स रस के देवता काल को भयानक रस के देवता, महेंद्र को वीर रस के देवता तथा ब्रम्हा को अद्‌भुत रस के देवता माना गया है। इसके पश्चात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के विषय में गहनता से विचार करते हुए वर्णन किया गया है और उसी के साथ–साथ रस के स्थायी और संचारी भावों के द्वारा रस के लक्षणों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है, जैसे– श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है, तो उससे किन–किन भावों का सृजन हो रहा है। श्रृंगार रस के अंतर्गत होने वाले समस्त भावों की व्याख्या स्त्री–पुरुष के सन्दर्भ आदि में किस प्रकार की जाती है, आदि को वर्णित किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय रस के सूक्ष्म से सूक्ष्म त्तवों को व्याख्यित करता है, और यह अध्याय पूर्णतः रस को ही समर्पित है। जिसमें रस सम्बन्धित प्रत्येक पहलू को विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया गया है।

2:5:7 भावाध्याय

सार– रस के पश्चात भरत मुनि द्वारा भावों को व्यक्त किया गया है। जिस शोधार्थी द्वारा संक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

सातवाँ अध्याय भावों के अध्ययन पर आधारित अध्याय है, इसके अंतर्गत भाव, विभव, स्थाई तथा संचारी या व्यभिचारी भावों के विषय के विस्तृत वर्णन के साथ ही आठ प्रकार के सात्विक भावों का (रसों की दृष्टि से) वर्णन किया गया है। छठे अध्याय के अंत में जिन भावों के स्वरूपों व लक्षणों के निरूपण को अंकित किया गया है। इसके अतिरिक्त रसाध्याय के अंतर्गत नाट्य के अंगों के मध्य उद्देश्य संकीर्तन के रूप में भावों का उल्लेख किया गया था और वहां रस निरूपण के प्रसंग में ही भावों की चर्चा की गई थी, परन्तु यह प्रधानता स्थायी, संचारी आदि भावों के ही लक्षणों का ही वर्णन अभीष्ट है।

भावों के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है, कि अभिनेता वाचिक, आंगिक, मुखराग एवं सात्विक अभिनयों के द्वारा काव्य रचना में निपुण कवि के अंतःकरण में स्थित भावों को भावित किया गया हैं। वाणी अंग और मन के माध्यम से जो काव्य के अर्थों को व्यंजित करते है। नाट्य की सामान्य भाषा में वे भाव कहलाते है। प्रथम कारिका में यद्यपि प्रकरण से चितवृति के उद्भव हेतु, जो सम्बंधित विषय है, उसे विभाव कहा गया है। तथापि विभाव के विषय को स्पष्ट करने हेतु, ऋषियों द्वारा भरत मुनि से प्रश्न पूछे गए कि विभाव इत्यादि गद्य भाग से है, अर्थात् की विभाव यह क्या है। इसी के उत्तर में भरत मुनि ने विभाव्यते इत्यादि गद्य भाग से दिया है। भरत मुनि द्वारा कहा गया कि विभाव शब्द विज्ञानार्थ का प्रतीक है। विभाव, कारण, निमित और हेतु शब्दों का समानार्थी शब्द है। यह वाणी अंग और सात्विक–अभिनय को विभावित या वर्णित करते है। अतः विभव शब्द से मात्र ज्ञान होना ऐसा सीमित अर्थ ग्रहण करना सुसंगत प्रतीत नहीं होता है। यह वाणी तथा अंगों के अभिनय के द्वारा विविध अर्थों को विभावित करते है।

अतः इन्हें विभाव की संज्ञा दी गई है, भरत मुनि ने विभाव का अर्थ को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बताया है अर्थात् विभाव को एक विशिष्ट ज्ञान के समान माना है। जिसके द्वारा स्थायी तथा व्यभिचारी भाव वाचिक आदि अभिनयों के साथ विभावित होते है। विशेष रूप से जाने जाते है, वह विभाव कहे जाते है। इसके पश्चात् ऋषियों द्वारा प्रश्न पूछा गया कि अनुभाव क्या है? इसका उत्तर देते हुए भरत मुनि ने कहा कि अभिनय के दृष्टिकोण से अनुभाव का

अपना एक विशिष्ट उपयोग होता है। विभाव के प्रति में जो भी भाव अभिनय के द्वारा अभिव्यक्त किये जाते है, उनका भावन, साक्षात्कार या प्रतीति अनुभावों के द्वारा ही संभव है। इस प्रकार वाणी, अंग और सात्विक अभिनय के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण इन्हें अनुभाव की संज्ञा दी गई है। इस सन्दर्भ में यह श्लोक प्रस्तुत किया जा रहा है कि–

वांगड्गभिनयेनह यत स्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
शाखाड्गोपंग संयुक्तस्त्वनु भावस्तः स्मृतः।।[1]

अर्थात् शाखा अंग और उपांगो से युक्त वाणी, अंग और सात्विक–अभिनय के माध्यम के द्वारा जिन अर्थों की प्रस्तुति के समय व्यंजित कि जाये उसे अनुभाव कहा जाता है। इस व्याख्या से यह पुर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि विभाव और अनुभाव हमेशा ही भावों से सम्बन्धित रहते है। इनमें विभाव और अनुभाव तो लोक प्रसिद्ध है। इनके लक्षणों का वर्णन इस लिए अपेक्षित नहीं है, क्योंकि इसका सम्बन्ध लोक स्वभाव से होता है। लोक स्वभाव से सिद्ध तथा लोक–जीवन के अनुगत व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले, भावों से उत्पन्न इस अनुभाव, विभावों को विद्वानों ने अभिनय में समझ लेना चाहिए। इनमें आठ स्थायीभाव, तैतीस व्यभिचारी भाव और आठ प्रकार के सात्विक भाव होते है।

इस प्रकार काव्य रस की अभिव्यक्ति के हेतु कुल मिलकर उन्चास भाव होते है। इन सभी भावों के उपर्युक्त गुणों और संयोगों के द्वारा रस की निष्पत्ति होती है। ऋषियों द्वारा पुनः प्रश्न पूछा गया कि यदि काव्यार्थ की अभिव्यंजना के आश्रयभूत, विभाव, अनुभाव आदि उन्चास भावों द्वारा ही सामान्य गुण योगों से रसों की निष्पत्ति होती है, तो स्थायी भाव ही रस की उपलब्धि करते हैं, यह क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में भरत मुनि द्वारा कहा गया है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव स्थायी भावों के हमेशा आश्रित रहते है। सभी अन्य भावों को आश्रय प्रदान करने के कारण स्थायी भावों का स्वामी माना जाता है। स्थानीय पुरुषों के गुण तुल्य अन्य भाव उन गुणों की विशेषता के कारण ही स्थायी भाव रूपी प्रभु के आश्रित रहते है। स्थायीभाव रूपी स्वामी के अन्य व्यभिचारी भाव कुटुम्बियों के समान होते है। इस दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया गया हैं। जिस प्रकार बड़े परिवार वाला राजा स्वयं ही राजा के पद का अधिकारी होता हैं।

---

(1) शुक्ला शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / नाट्यशास्त्रम / अध्याय 7 / श्लोक 5

उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव जैसे विस्तृत परिवारवाला स्थायी भाव ही रस रूपी स्वामित्व का अधिकारी होता है। अतः जिस प्रकार मनुष्यों में राजा और शिष्यों में गुरु का पद बड़ा होता है। उसी प्रकार सम्पूर्ण भावों में स्थायीभाव का पद सर्वोपरी होता है।

2:5:8 उपांगाभिनय

सार— इस अध्याय के अंतर्गत उपांगो के अभिनय के विषय मे चर्चा प्रस्तुत की गई है, जिसमे मुख, शरीर अंगों व भावों द्वारा होने वाले अभिनय के विधान का वर्णन किया गया है। जिसे अध्याय के अध्यन के पश्चात प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है

इसके पूर्व के अध्याय के अंतर्गत भावों के विषय में विस्तृत जानकारी व उसके सम्पूर्ण विधान को कहा गया है। आठवां अध्याय उपांगाभिनय पर आधारित है, जिसके अंतर्गत उपांगाभिनय सम्बन्धी सभी प्रश्नों को विस्तारपूर्वक उत्तर भरत मुनि द्वारा ऋषिगणों को दिए गए है। इस अध्याय के अंतर्गत ऋषिओं द्वारा कहा गया है, कि रस व भाव के विषय में पूर्व के अध्यायों में ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् अभिनय के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते है, कि नाट्य के अंतर्गत अभिनय के कितने भेद माने गए है। इसे किस प्रकार प्रयोग में लाना है, इन प्रश्नों का उत्तर भरत मुनि द्वारा विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

जिससे नाट्य की सिद्धि को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। इसके पश्चात् भरत मुनि ने उत्तर देते हुए, अभिनय के चार प्रकारों का वर्णन प्रस्तुत किया। जिसका विधिपूर्वक विधान कहा गया। सर्वप्रथम इस बात को स्पष्ट किया गया, कि इसे अभिनय क्यों कहा जाता है "नी" धातु में "अभि" उपसर्ग लगाये जाने पर "अच्" प्रत्यय होने पर अभिनय की प्राप्ति होती है अर्थात् प्रेक्षकों के सम्मुख नाट्य प्रस्तुत होने से यह अभिनय कहलाता है। अंगों और उपांगों के माध्यम से अभिनय को प्रस्तुत किया जाता है और चित्त को जिस रस का आस्वादन होता है। वह इसको सिद्ध रूप में सफलता प्रदान करता है। इसके पश्चात् अभिनय के चार भेदों का वर्णन किया गया है और अभिनय के चार भेंद इस प्रकार कहे गए है— आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। जिसमें से सात्विक अभिनय का वर्णन पूर्व अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है। इस अध्याय में शेष अभिनयों का वर्णन प्रस्तुत है। जिसमें से आंगिक अभिनय के विषय में भरत मुनि द्वारा तीन भेद बताये गए है— मुखज, शरीरज तथा चेष्टाकृत। जिसे शाखा, अंग और उपांग से युक्त माना गया है।

आंगिक अभिनय के छः भेद अंग, शिर, हस्त, उरस, पाश्व, कटी एवं पाद और छः उपांग नेत्र, भौह, नासिक, कपोल एवं चिबुक बताये हैं। आंगिक अभिनय की शाखा कहा गया है। सूचना आधारित अभिनय को अकुर तथा कारण आधारित अभिनय को नृत्त कहा जाता है। इस प्रकार अभिनय के अध्याय के अंतर्गत सभी विधानों को बतलाते हुए भरत मुनि द्वारा अभिनय के विभिन्न पहलुओं के विषय में वर्णन करते हुए, शिर से होने वाले नाट्य प्रयोग को कहा और मात्र शिर से होने वाले अभिनय के तेरह प्रकारों का वर्णन किया। जिसमें अकम्पित के अंतर्गत उपदेश, संकेत, प्रश्न आदि को रखा, परन्तु विभिन्न भाव क्रोध, तर्क, वितर्क, तर्जन आदि में कम्पित शिर अभिनय के अंतर्गत रखा। शिर के द्वारा होने वाले सभी प्रकार के भावों का वर्णन शिर अभिनय के अंतर्गत किया गया है। शिर माध्यम से होने वाले सभी प्रकार के भावों व अभिनय को विस्तारपूर्वक बताया हैं– जैसे किस दिशा में शिर को घुमाया जाये तो उसका क्या अर्थ है या क्या भाव है। शिर को ऊपर किया गया या नीचे किया या पीछे मोड़ा तो उसका क्या अर्थ है। इस प्रकार हर एक संचालन व भाव को दर्शाते है, इसका वर्णन किया गया हैं। इसके पश्चात दृष्टि के द्वारा होने वाले अभिनय का वर्णन किया गया है, क्योंकि दृ ष्टि के माध्यम से आठों रसों को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाता हैं।

इस कारण अभिनय में आठ दृष्टियाँ मानी जाती है, साथ ही दृष्टि के माध्यम से आठ स्थायी भावों को भी दर्शाया जाना संभव है व अन्य 20 स्थायी भाव और माने गए है अर्थात् 36 प्रकार की दृष्टियों का वर्णन अभिनय के अंतर्गत प्राप्त होता है। इसके पश्चात् रस की दृष्टि का वर्णन भरत मुनि द्वारा किया गया है, कि किस प्रकार श्रृंगार रस के अंतर्गत उसकी कोमलता को प्रस्तुत किया गया है या भयानक रस के अंतर्गत आँखों की पुतलियों में किस प्रकार के परिवर्तन आते है अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है, कि मनुष्य की आंखों व देखने का तरीका किस प्रकार भाव को प्रकट करता है और कौन–सा भाव, कौन–सा रस प्रकट करता है।

इसका अभिनय में किस प्रकार प्रयोग किया गया है। इसका पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार स्थायी भावों की दृष्टियों, संचारी भाव की दृष्टियों, आंखों की पुतलियों का अभिनय में प्रयोग, भ्रकुटियों का प्रयोग, भाव नासिका का उपयोग व नाट्य प्रयोग में कोपल, अधरोष्ठ चिबुक (दांतों के लक्षण) इसके पश्चात् मुखज कर्म व ग्रीवा कर्म की चर्चा की गई हैं। जिसके अंतर्गत मुखज के 6 भेद व ग्रीवा के 6 भेद कहे है। मुखज के अंतर्गत मुख के

खुले होने या बंद होने, मन के भावों का मुख पर आने आदि प्रकार के भावों का वर्णन तथा अभिनय की दृष्टि से नाट्य प्रयोग का वर्णन किया गया हैं। इसके पश्चात् किस प्रकार से ग्रीवा का संचालन नाट्य प्रयोग की दृष्टि से करना है। इसका वर्णन किया गया है। इस प्रकार अभिनय भावों को प्रकट करने का एक उत्तम माध्यम है और साथ ही उन भावों को श्रोता गणों तक पंहुचाना। उस नाट्य की सफलता को दर्शाता है, जो भाव रस सहित श्रोता गणों तक पहुचनें में सफल हो। उस अभिनय को सर्वोत्तम माना जाता है। इस नाट्य प्रयोग की सफलता हेतु, आचार्य भरत मुनि द्वारा अभिनय का पूर्ण वर्णन विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। जिसमें शारीर, मुखज तथा चेष्टा तीनों का सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है, क्योंकि शारीर की मुख या मन की सभी चेष्टा के भाव ही अभिनय में देखने को मिलते है। इस प्रकार यह उपांगाभिनय आधारित अष्टम अध्याय समाप्त होता है। इसके पश्चात् नवंम अध्याय के अंतर्गत हस्ताभिनय की चर्चा की जाएगी।

2:5:9 आंगिक अभिनय

सार– इस अध्याय मे अंगो के द्वारा होने वाले अभिनय की चर्चा की गई है, जिसमें हस्त तथा पाद क्रिया द्वारा होने वाले अभिनय का वर्णन सूचित तथा सचित्र प्रस्तुत किया गया है। जिसे शोधार्थी द्वारा अध्यन के पश्चात प्रस्तुत किया गया है।

नवंम अध्याय हस्त अभिनय पर आधारित है, इससे पूर्व के अध्याय के अंतर्गत शिर, नेत्र, भौहों, नासिक आदि उपांगों का वर्णन प्रस्तुत किया गया था, तथा इस अध्याय के अंतर्गत हस्त अभिनय में प्रयोग होने वाली मुद्राओं का वर्णन के साथ ही उरःस्थल आदि के वर्णन को प्रस्तुत किया गया है, तथा उसके लक्षण कर्मों तथा योजना को बताया गया है। इस प्रकार हस्त मुद्रा में असंयुक्त हस्त मुद्राओं के 24 भेद बताये गए है। जिसके साथ ही उससे सम्बंधित देवता, जाति तथा वर्णों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो कि इस प्रकार है–

क्रम सं०	मुद्रा	देवता	जाति	वर्ण
1.	पताक	ब्रह्माजी	ब्राह्मण	श्वेत
2.	त्रिपताक	शिव	क्षत्रिय	रक्त
3.	कर्तरीमुख	चक्रपाणि–विष्णु	क्षत्रिय	ताम्र
4.	अर्धचन्द्र	म्हादेव	वैश्य	धूम्र

5.	अराल	वसुदेव	मिश्र	रक्त
6.	षुकतुण्ड	मरीचि	ब्राह्मण	रक्त
7.	मुष्टि	चन्द्र	शूद्र	नील
8.	शिखर	कामदेध	गान्धर्व	धूलियां
9.	कपित्थ	पद्यगर्भ–विष्णु	ऋषि	श्वेत
10.	कटकामुख	रघुराम	देव	ताम्र
11.	सूचीमुख	विश्वकर्मा	देव	श्वेत
12.	पद्यकोष	भार्गव	यक्षकिन्नर	श्वेत
13.	सर्पशीर्ष	शिव	छेव	पीत
14.	मृगशीर्ष	महेश्वरशिव	ऋषि	श्वेत
15.	कंगुल	पद्म	सिद्ध	सुवर्ण
16.	अलपद्य	सूर्य	गान्धर्व	धूलि
17.	चतुर	सूर्य	मिश्र	धूलि
18.	भ्रमर	गरुड	मिश्र	घन
19.	हंसास्य	ब्रह्माजी	मिश्र	श्वेत
20.	हंसपक्ष	कामदेव	अप्सरा	नील
21.	सन्दंश	बाल्मीकि	विद्याधर	श्वेत
22.	मुकुल	चन्द्र	संकीर्ण	श्वेत
23.	ऊर्णनाभ	इन्द्र	देव	श्वेत
24.	ताम्रचूड	कूर्मावतार	क्षत्रिय	रक्त[(1)]

(1)शुक्ला शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/ अध्याय–9/श्लोक–4–10

असंयुक्त हस्त मुद्रा[1]

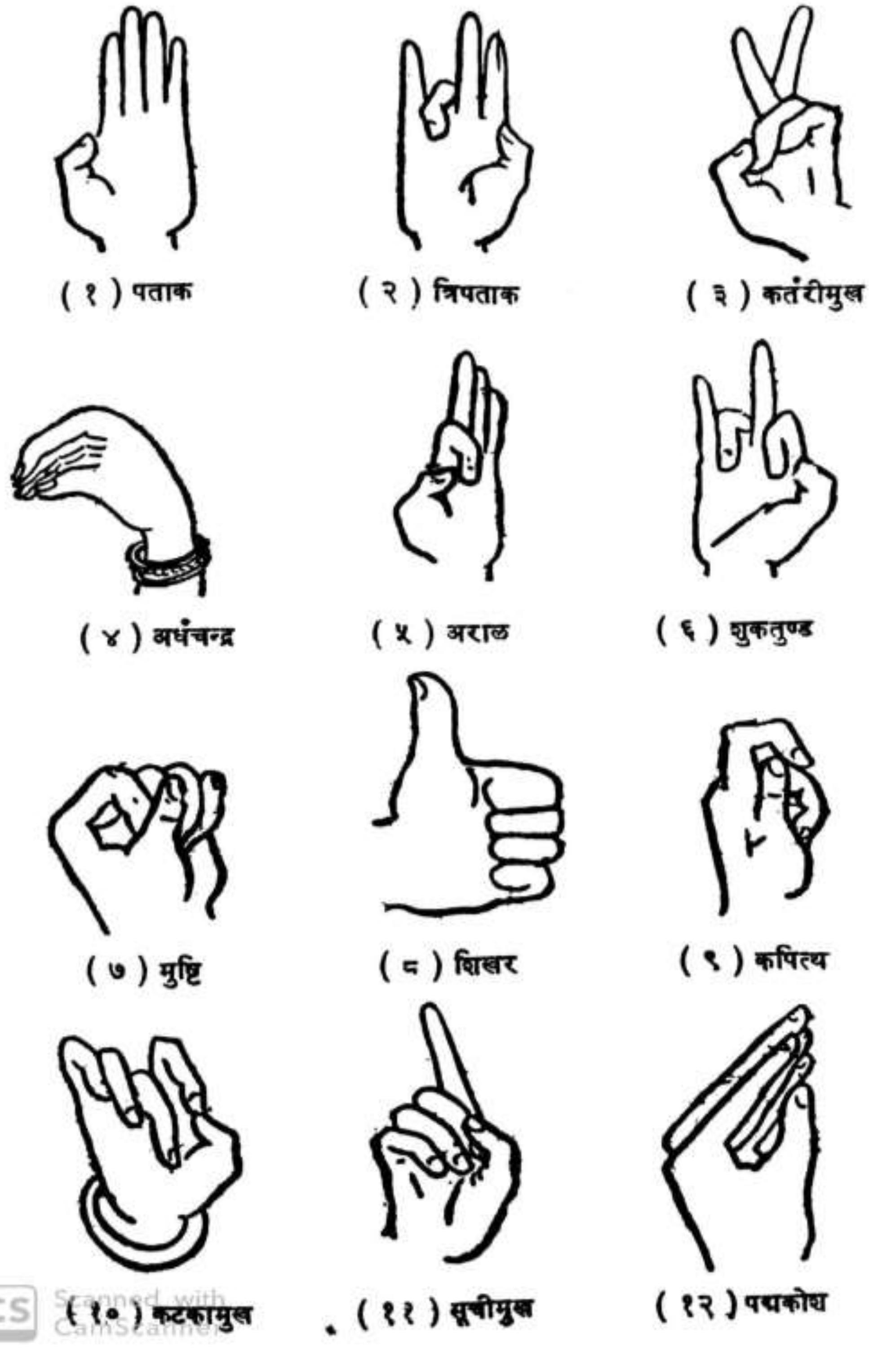

Scanned with CamScanner

(1)शुक्ला शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–9 / पृ0–39

(१३) सर्पशीर्षक

(१४) मृगशीर्ष

(१५) कङ्गुल

(१६) अलपद्म

(१७) चतुर

(१८) भ्रमर

(१९) हंसास्य

(२०) हंसपक्ष

(२१) सन्दंश

(२२) मुकुल

(२३) ऊर्णनाभ

(२४) ताम्रचूड

Scanned with

इसके प्रकार संयुक्त हस्त मुद्राएं 13 मानी हैं[1], जिनके नाम इस प्रकार हैं–

(१) अंजलि

(२) कपोत

(३) कर्कट

(४) स्वस्तिक

(५) कटकावर्धमान

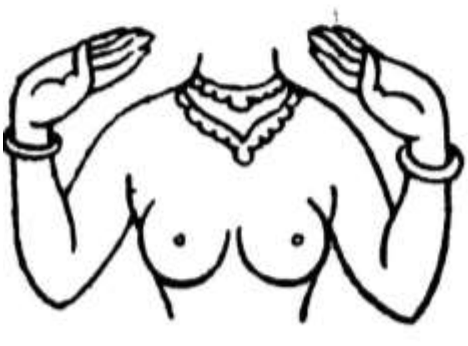

(६) उत्सङ्ग

(७) निषध

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–9/पृ0–39

(८) डोला

(९) पुष्पपुट

(१०) मकर

(११) गजदन्त

(१२) अवहित्थ

(१३) वर्द्धमान

1. अंजलि	**2.** कपोत	**3.** कर्कट	**4.** स्वस्तिक	**5.** कटकावर्धमानक
6. उत्संग	**7.** निषध	**8.** दोला	**9.** पुष्पपुट	**10.** मकर
11. गजदन्त	**12.** अवहित्थ	**13.** वर्धमान		

इसके पश्चात 30 नृत्त हस्तों(1) का वर्णन भरत मुनि द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं। जो कि इस प्रकार हैं।

1. चतुरस्त्र	**2.** उद्वृत्त	**3.** तलमुख	**4.** स्वस्तिक
5. विप्रकीर्ण	**6.** अरालकटकामुख	**7.** आविद्धवक्र	**8.** सूच्यास्य
9. रेचित	**10.** अर्धरेचित	**11.** उत्तानवच्चित	**12.** पल्लव
13. नितम्ब	**14.** केशबन्ध	**15.** लता	**16.** करिहस्त
17. पक्षवंचितक	**18.** पक्षप्रद्योतक	**19.** गरूडपक्ष	**20.** दण्डपक्ष
21. उर्ध्वमण्डली	**22.** पार्श्वमण्डलिन्	**23.** उरोमण्डली	**24.** उरःपार्श्वमण्डलिन
25. मुाष्टिकस्वस्तिक	**26.** नलिनीपद्मकोष	**27.** अलपल्लव	**28.** उल्वण
29. ललित	**30.** वलित		

इस प्रकार 64 हस्त मुद्राओं का वर्णन भरत मुनि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यदि असंयुक्त के 24 संयुक्त के 13 तथा नृत्त की 30 मुद्राओं के नाम बताये है परन्तु इन सभी का योग 67 होता है और भरत द्वारा 64 हस्त मुद्राओं का वर्णन किया गया है। इसका वर्णन संगीत रत्नाकर तथा श्री कंठ की रस मंजरी से यह मिलता है, कि तीन मुद्राओं के नाम दो बताये है, पर उनकी मुद्रा समान है श्री कंठ की रस मंजरी में इस प्रकार से वर्णित है कि–

एतेऽभिनयहस्ताः स्युः सप्तत्रिंशन्युनेमंता।।(2)

इस प्रकार संगीत रत्नाकर से यह वर्णन प्राप्त होता है कि में से तीन हस्त मुद्रा समान है, परन्तु नाम से समान नहीं है। नृत्त हस्त की उरोमण्डलि, हस्तपार्श्वमंडलित भिन्न नहीं मानी जाती। स्वास्तिक मुद्रा को अलग करने पर विप्रीर्ण मुद्रा के समान है, तथा अलपल्लव मुद्रा उल्वण के समान है। इस प्रकार का वर्णन दोनों ग्रंथों से प्राप्त होता है। जिससें 67 में से

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–9 / श्लोक–11–16
(2)चौधरी, सुभद्रा(अनुवाद) / शारंगदेव–संगीत रत्नाकर / अध्याय–7 / श्लोक–84 / पृ0–26

64 हस्त मुद्रा प्रसिद्ध होने का वर्णन प्राप्त होता है तथा इन 64 का विस्तारपूर्वक विधान, लक्षण तथा कर्मो को कहा गया है। हाथ के अन्य कर्म इस प्रकार कहे है, **1:** उत्कर्षण–गुणों को विकसित करना, **2:** विकर्षण–खीचना, **3:** अपकर्षण–ऐठना, **4:** परिग्रह–दान लेना, **5:** निग्रह–अवरोध, **6:** आवाहन–पास लाना, **7:** नोदन–व्यथन, **8:** संश्लेष–संयोग, **9:** वियोग, **10:** रक्षण, **11:** भीक्षण, **12:** विक्षेप, **13:** धून्न–कम्पन, **14:** विसर्ग–त्याग, **15:** तर्जन–फटकार, **16:** छेदन, **17:** भेदन, **18:** स्फोटन–विकसित करना, **19:**मोटन–संकोचन, **20:** ताडन[(1)]। इन सभी को हस्त कर्म माना गया हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के हस्त प्रचार माने है। उत्तान, पाश्वेग और अधोमुख हस्ताभिनय को स्थित व महौल के अनुसार करना चाहिए। उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रो के अलग–अलग हस्त अभिनयों का वर्णन उनके कार्य और स्वभाव के अनुसार बताये गए है। नकारात्मक भावों के साथ अभिनय नहीं करना चाहिए। उन सभी भावों को वर्णित किया गया हैं, जिनमें अभिनय नहीं करना चाहिये जैसे– शोक, ग्लान, शीत से कम्पित आदि। सकारात्मक भाव व भावों के अभिव्यंजक व काकू से युक्त अभिनय करना चाहिए। पांच प्रकार हाथों की क्रिया के बताये है–उत्तान, वत्तुर्ल, त्र्यस्त्र, स्थित और अधोमुख। इसके पश्चात् 30 नृत्त हस्तो के कार्य विधान व लक्षण बतलाये गए है। इसके बाद उरःकर्म, पार्श्व कर्म, उदरकर्म, कटिकर्म, ऊरूकर्म जडघाकर्म पादाभिनय के विषय में चर्चा की गई है। इस प्रकार नवंम अध्याय समाप्त होता है।

2:5:10 शरीराभिनय

सार– शरीर के माध्यम से होने वाले अभिनय का वर्णन किया गया है। जिसके अंर्तगत आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित कोख उदर उरु आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं, जो शोधार्थी द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया हैं।

प्रस्तुत अध्याय शरीराभिनय पर आधारित है। इसके अंतर्गत शारीर के विभिन्न भागों के अभिनय में प्रयोगों को वर्णित किया गया है, जो कि आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित और सम बताये है। इसके अंतर्गत इनके पूर्ण विवरण को बताते हुए, उसके लक्षण व कर्मो को बताया है। इसके पश्चात् पाश्व अर्थात् कोख के लक्षण बताये है। जिसमे नत, समुन्नत, प्रसारित, विवर्तित तथा अपसृत यह पांच भेद बताये है। इसके पश्चात उदर के तीन भेद क्षाम, खल्व

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–9 / श्लोक–159–163

और पूर्ण बताये है, और उदर के भेदों के कार्यों को वर्णित किया है। इस प्रकार कटि के भी पांच भेदों का वर्णन किया है। इसके साथ ही इसकी योजना, लक्षण बताये है। त्तपश्चात उरु(पिंडलियों) की अव्स्ताओं का वर्णन किया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत शारीर के प्रत्येक अंगों तथा उनसे होने वाले अभिनय की क्रिया उसके प्रयोग को लक्षण, योजना व कर्म के अनुसार प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद पैरों के पंजों के माध्यम से होने वाले कर्मो को बताया हैं। चाल के विभिन्न भेदों का वर्णन प्रस्तुत किया हैं। पैर, पंजा, एडी सभी का वर्णन किया गया है। इसके साथ यह अध्याय समाप्त होता हैं। जिसमें शारीर के अंगो का अभिनय के विधान का वर्णन विस्तारपूर्वक बताया गया। इसके पश्चात् चारी विधान नामक अध्याय का वर्णन किया गया है।

2:5:11 चारीविधान

सार– नाट्य उपयोगी चलने की क्रिया को चारी विधान कहा गया है, जिसमे आकाश तथा भूमि मे चलने की क्रिया का वर्णन किया गया है। दशम अध्याय मे इसके जांघ तथा उरु के रूप मे भी व्याख्यायित किया गया है। जिसे शोधार्थी अपने शब्दों मे व्यक्त करने का प्रयास किया है।

एकादशा अध्याय नाट्यशास्त्र में चारीविधान है, दशम अध्याय की समाप्ति पर चारी व्यायम लक्षण पद कहा गया था। यहाँ चारी शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया हैं, और इस शब्द की व्याख्या करते हुए यह कहा गया कि 'चर' धातु से औणादिक 'इन' प्रत्यय से भिन्न 'ई' को डीप कर चारी शब्द निष्पन्न होता है। चारी द्वारा आकाश तथा पृथ्वी पर चलने का अभिनय किया जाता है। अतः आकाश एवं भूमि की चारियों होती है। दशम अध्याय की समाप्ति पर चारी पद कहा गया है। इसमें शरिराभिनय के क्रम में नाभि, जंघा, उरु के करण रूप में दिखलाये गए। कर्मों से भिन्न पादकर्म होते है, कटी आदि की गतियाँ मंडल भेद से निष्पन्न होती है। अतः कटी, पशर्व, उरु, जंघा तथा पाद के द्वारा होने वाले कार्य या व्यापार का एक साथ होना चारी है। जिनमें चेष्टाए व्याप्त रहती है। इनका अभिनय में बड़ा महत्व माना जाता है, क्योंकि चारी के द्वारा हो नृत तथा अंगहारों की रचना तथा शास्त्रों का चलनाभी सम्पन्न होता है। नाट्य में चारी की के मस्तक हस्त आदि अंगों को संचालन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त आदि अंगो का संचालन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त नृत्य के कारण खंड तथा मंडल का भी चारी ही आधार होती है। जिसकी विशेष रूप से नृत में

संयोजन की जाति है। चारी शब्द का आशय वर्तमान चल शब्द से है तथा उसे ही चारी शब्द यहाँ निदिष्ट किया गया है। यही सामान्यतः कहाँ जा सकता है, कथकली में सारी तथा मणिपुरी नृत्य में होने वाली चाली, इसी शब्द का अपभ्रंश या वर्तमान प्रचलित नाम है, जिसे अंग्रजी में ''स्टेप'' कहते है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत चारी का वर्णन किया गया है पाद, जांघ, ऊरू आदि द्वारा चले की चेष्टा चारी कहलाती है चारी को व्यायम कहा गया है एक पैर से किया जाने वाला चारी, दोनों पैरों द्वारा किया जाने वाला अभिनय करण कहा जाता है करणों का योग खंड और तीन चार खंडो से मंडल का निर्माण होता है चारी से ही नृत्त होता है चारी से ही सभी चेष्टाएँ उत्पन्न होती है। चारी का उपयोग युद्ध में भी किया जाता है, इस प्रकार आगे चारी विधान का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार है–

1. समपादा	**2.** स्थितावर्त्ता	**3.** शकटास्था	**4.** अध्यर्धिका
5. चाषगति	**6.** विच्यावा	**7.** एककाक्रीडिता	**8.** बद्धा,
9. ऊरूद्धृत्ता	**10.** अड्डीता	**11.** उत्स्यन्दिता,	**12.** जनिता
13. स्यन्दिता	**14.** अपस्यन्दिता	**15.** समोत्सारितमंडली	**16.** मत्तल्ली[(1)]

इन सभी के लक्षणों व कर्मो का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् सोलह आकाश चारियों को प्रस्तुत किया गया है। जिनके नाम इस प्रकार है–

1. अतिक्रांता	**2.** अपक्रंता	**3.** पार्श्वक्रांता	**4.** अर्ध्वजानु
5. सूची	**6.** नुपुरपादिका	**7.** डोलपावा	**8.** आक्षिप्त
9. व्यविद्धा	**10.** उद्वृत्ता	**11.** विद्युद्भ्रान्ता	**12.** अलाता
13. भुजगात्रासिता	**14.** हरिणप्लुता	**15.** वण्डपावा	**16.** भ्रमरी[(2)]

इनके लक्षणों और कर्मों को विस्तार से कहा गया है, इन सभी का उपयोग वज्र, धनुष आदि शास्त्रों के प्रयोग में किया जाता है, कि किस प्रकार हाथ और पैर का संचालन करना है। जिस तरफ का पैर उठाया जाता तो उसी तरफ के हाथ का संचालन क्या होगा व किस प्रकार होगा इसका निर्धारण प्रस्तुत अध्याय में वर्णित किया गया है। भरत मुनि द्वारा ऋषियों को बतलाया गया, कि पैरों के संचालन के अनुरूप ही हाथों के संचालन को निर्धारित किया जाता है और उसी के अनुसार ही पीछे की ओर जाना या आगे की ओर बढने की गति

(1) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–11/श्लोक–8–10
(2) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–11/श्लोक–11–13

निर्धारित होती है और पैरों को जैसे ही भूमि पर रखा जाता है। हाथों के संचालन की क्रिया पूर्ण हो जाती है। इस प्रकार चरिओं के पश्चात शस्त्रों के मोक्षण का विस्तारपूर्वक ज्ञान प्रस्तुत किया भरत मुनि द्वारा मनुष्य के छः स्थानक[(1)] बताये गए है–

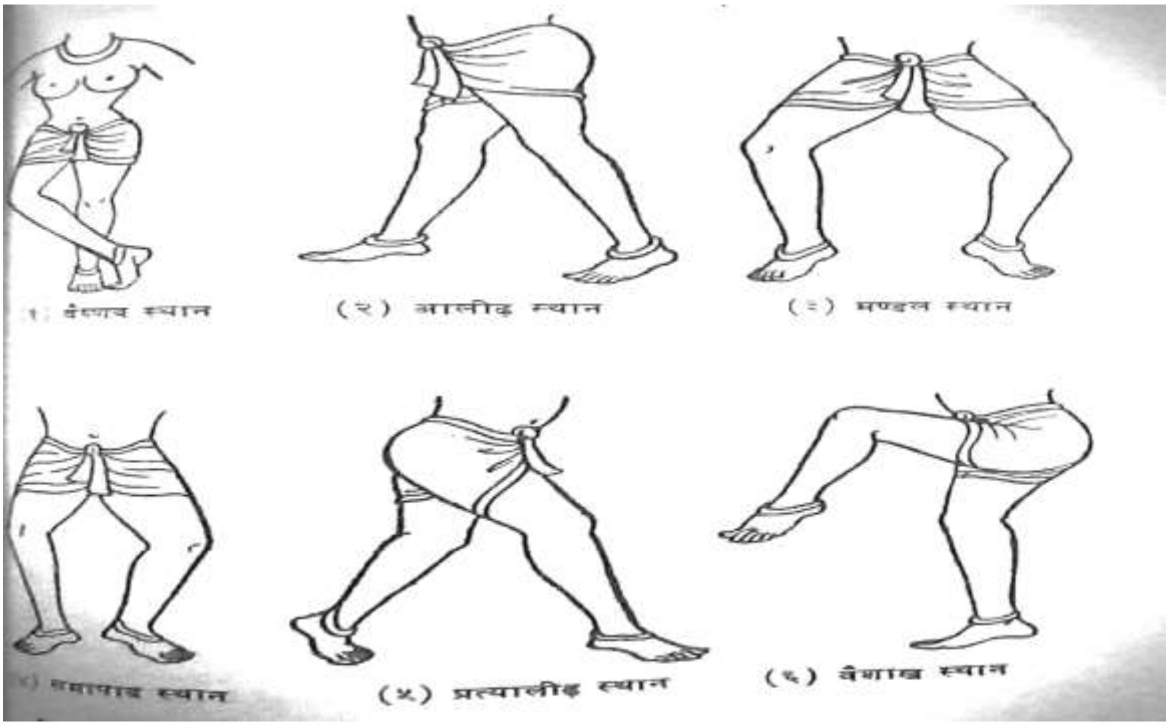

1. वैष्णव	**2.** आलीढ़	**3.** मंडल
4. समपाद	**5.** प्रत्यालीढ़	**6.** वैशाख

इसके अंतर्गत इनका लक्षण व कर्मों का विस्तार कहा गया है। इसके पश्चात चार न्याय शास्त्रों का मोक्षण बताया गया है– 1:भारत, 2:सत्त्वत, 3:वार्षगण्य 4:कौशिक। इस प्रकार पैरों के संचालन शस्त्रों, हस्त संचालन का वर्णन बताया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत अभिनेता के विषय में भी बताया गया है, कि उसे अपने शरीर को स्वस्थ व साफ रखना चाहिए, उसे तेल से मालिश करनी चाहिए, फिर जौ के आटे से बना हुआ उबटन अपने शरीर पर लगाना चाहिए और उसे योग और व्यायाम कर शरीर को स्वस्थ बनाना चाहिए और उसे उत्तम भोजन को ग्रहण करना चाहिए। उसे फल, मांस आदि को अपने भोजन में शामिल करना चाहिए, क्योंकि सही और संतुलित भोजन ही शरीर को बल प्रदान करता है और यही स्वस्थ रूप में अभ्यास में सहायता प्रदान करता है। शरीर के थके होने स्वच्छ न होने, प्यास

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–11 / पृ0–104–108

या भूख से परेशान या ज्यादा खालेने आदि का प्रभाव अभ्यास पर पड़ता है और उसमे विघ्न उत्पन्न हो सकता है। शरीर के दृढ, सुंदर, वक्षः स्थल को चौड़ा और बुद्धि को खुला होना चाहिए। इन सब विवरण के पश्चात् मंडल के भेदों का वर्णन अगले अध्याय में किया गया है। इस प्रकार दशम अध्याय समाप्त होता हैं।

2:5:12 मंडलविधान

सार– चारी अभिनय को करण खंड तथा मंडल का आधार माना जाता हैं, जो कि प्रस्तुत अध्याय में वर्णित की गई है जो शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई है।

नाट्यशास्त्र का द्वादश अध्याय मंडलविधान नामक अध्याय है। यह पूर्व में ही बताया जा चूका है, कि चारी द्वारा आंगिक अभिनय संपन्न किया जाता है, जो करण खंड तथा मंडल का आधार होता है। इस अध्याय में शस्त्रों के मोक्षण के अभिनयगत सन्दर्भ में मंडलों को बताया गया है। मंडल का सामान्य लक्षण यह है, कि चारियों के संयोग या वर्ग से जो बनता है, वह मंडल कहलाता है। अतः चारियों के समूह से मंडल निर्मित होता है। नाट्यशास्त्र में चारियों के समूह से ही इस मंडल निष्पत्ति होती है। मंडल के लक्षणों वर्णित किया गया है। अभिनव दर्पण में पादभिनय के अंतर्गत मंडल को एक पादभेद मान है। नाट्यशास्त्र में चारियों के समान मंडल को भी भौमिक तथा आकाशित वर्ग में विभाजित किया गया है। इनमें भौमिक और आकाशित के दस–दस प्रभेद किये गए है। युद्ध, नियुद्ध तथा परिक्रमण आदि के अभिनय में इस मंडलों का प्रयोग किया जाता है। आकाशित मंडल[1] के अंतर्गत 10 भेदों के नाम इस प्रकार हैं–

1. अतिक्रान्त	**2.** विचित्र	**3.** ललितसंचार	**4.** सूचीबद्ध
5. दण्डपाद	**6.** विहत	**7.** अलातक	**8.** वामविद्ध
9. ललित	**10.** क्रान्त		

भौमिक मंडल[2] के 10 भेद इस प्रकार हैं–

1. भ्रमर	**2.** आस्कन्दित	**3.** आवर्त	**4.** समोत्सारित
5. एलकाक्रीडित	**6.** अड्डिता	**7.** शकटास्या	**8.** अध्यर्धक
9. पिष्टकुट्ट	**10.** चाषगत		

(1) शुक्ला शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत– नाट्यशास्त्रम/अध्याय–12/श्लोक–2
(2) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–12/श्लोक–4–6

नाट्यशास्त्र में आकाशित एवं भौमी मंडलों के अतिरिक्त सममंडल का भी निर्देश किया है। समचारियों में जिसका प्रयोग किया जाता है, उसे सममंडल कहते है। इस प्रकार इन मंडलों को युद्ध, बाहू युद्ध, घुमने में लीलापर्ण तथा सुमधर अंगों का प्रदर्शन करते हुए। वाद्यों की ध्वनि ताल लय के अनुसार होता हैं।

2:5:13 गतिप्रचार

सार– प्रस्तुत अध्याय मे पात्रों द्वारा गतिप्रचार या लय आधारित अध्याय है, जिसमें गति और लय को व्याख्यित किया गया है। जिसको शोधार्थी द्वारा संगीत में प्रयोग होने वाली गति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इससे पूर्व के अध्याय के अंतर्गत चारी मंडल निर्मित करने की विधि के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, तथा प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत पात्र द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले प्रत्येक प्रकार की गति के विषय में बताया गया है। रंगमंच में पात्र का प्रवेश एक महत्वपूर्ण तथा सावधानी द्वारा किये जाना वाला विषय है। जिसमें प्रत्येक को एक निश्चित गति, लय व काल के अंतर्गत प्रवेश करना होता है। रंगमंच में प्रवेश के दौरान पात्रों की निश्चित भावभंगिमा, शारीरिक हाव–भाव आदि की निश्चित लय निर्धारित होती है, जैसे–छाती, बाहू, मस्तक, गला आदि किस प्रकार की स्थिति में होना चाहिए। पात्र किस प्रकार अपने पदों को रखे व किस प्रकार ताल के अंतर्गत पद(कदम) को उठाये या पृथ्वी पर रख व पात्रों की श्रेणी के अनुसार ताल का निर्धारण किया जाता था कि उच्च श्रेणी के पात्र जैसे–देवता, राजा आदि के लिए चार ताल व माध्यम श्रेणी के पात्रों के लिए दो ताल और स्त्रियों तथा निम्न श्रेणी के पात्रों के लिए एक ताल। इसी क्रम के अंतर्गत पात्र अपने कदम उठाया व रखा करते थे अर्थात् ताल, लय तथा कला के विषय में बताया गया है। साथ ही इसके विशिष्ट लक्षण व योजना आदि का वर्णन किया है, और इसके अनुसार गति के विधान का वर्णन किया है। जिसमें स्वभाविक गति जिसके अंतर्गत उत्तम पात्र की स्वाभाविक गति का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, उसके कदम किस प्रकार अपने स्थान से उठेगे और कैसे घुटने को कमर के समानुपात में उठाना और फिर कितने कदम किस प्रकार रंगमंच पर चल कर फिर घूमकर रंगमंच के कोनों की ओर बढ़ाना है आदि का पूर्ण वर्णन भरत द्वारा इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार गति के सभी लक्षणों को प्रस्तुत किया गया है कि पत्रानुसार गति का वर्णन, गति का विधान, रासनुसार गति का विधान आदि को वर्णित किया गया है।

भरत के द्वारा आठ प्रकार के रसों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। उसी के अनुसरण की पूर्ण विधि की चर्चा प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत की गई है, व पात्रों की विविध गतियों के विधान को बताया है, जिसमें मंत्री–गणों की गति, यति, श्रमण गति, विमानारोहण, आकाश, उन्नतप्रदेशरोहण, अवतरण, नौका–यात्रा, अश्वधिरोहण, सर्प–गति, विट–गति, पथिक, स्थूल गति, मत्त गति, उन्मत्त गति, विदूषक गति, दासादी–गति, शकार–गति, नीच–पात्र गति के साथ–साथ प्रत्येक उनके बैठने व श्यन आसनों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। श्यन आसनों के छः भेद वर्णित किये हैं– **1:**आकुंचित, **2:**सम, **3:**प्रसारित, **4:**विवर्तित, **5:**उद्वाहित, **6:**नत। इस प्रकार गतिप्रचार नाकम अध्याय समाप्त होता है। इसके पश्चात् कक्ष्या, परिधि तथा लोकधर्मी के विधान को अगले अध्ष्याय में बताया गया है।

2:5:14 कक्ष्यापरिधि तथा लोकधर्मि–निरूपणाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत रंगमंच की कक्षा की परिधि तथा उसके उपयोग का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी द्वारा उसे ही अध्ययन के पश्चात इस अध्याय में स्थान दिया गया है।

नाट्य के गृह के प्रकारों को स्पष्ट करते हुए, रंगमंच के परिधि के उपयोग की विधि का वर्णन किया गया है, कि किस प्रकार वाद्य वादकों को नेपथ्य गृह के मध्य स्थित भाग मे स्थान देना है व पात्र के रंगमंच पर स्थान और उसका एक ही स्थान पर रहते हुए विभिन्न देशो और प्रदेशों को दर्शना आदि। पात्र किस प्रकार अपनी ही कक्षा में रहते हुए अपनी परिक्रमण विधि द्वारा अपने देश–प्रदेश प्रदर्शित करते है और इसी के अनुसार भरत द्वारा उसकी कक्षा कि उपयोगिता को बताया गया। इसमे कक्षा परिधि को स्पष्ट करते देश, नगर, को देखते है। यह सभी स्थान नाटक की कथावस्तु के अनुसार ही पात्र का परिधि मे परिचालन बताया गया है रंग–मंच के लिए प्रदेश के विषय संबंधी बातें कहीं गयी हैं, कि मंच के भीतर, बाहर, मध्य सभी एक दूसरे से संबन्धित हैं। यह सभी अपनी परंपरा के अनुसार मंच पर अपना स्थान ग्रहण करते हैं, और पात्र सभी क्रिया और संवाद अपनी दाहिनी ओर मुंह करके ही प्रदर्शित करती है। मंच पर जिस दिशा मे भाण्ड वादकों और नेपथ्य के द्वारा को रखा जाता है, उसे ही नियम के अनुसार पूर्व दिशा समझा जाना चाहिए। भरत के द्वारा रंगमंच पर प्रवेश और निष्कासित होने के भी निश्चित नियम वर्णित किए गए है– जैसे पात्र जिस मार्ग के द्वारा प्रवेश करता हैं, वह उसी मार्ग से कार्य के पूर्ण होने के बाद पात्र मंच से

विदा लेता है या फिर किसी कारण वश यदि उसे किसी कार्य से मंच से जाना पड़ता है, तो वह उसी मार्ग से मंच पर वापस आता है, जिससे वह बाहर गया थ।ा पात्रो के समूह मे प्रवेश करने के नियमों को भी बताया गया है, जिसमें, उत्तम, माध्यम तथा अधम पात्रों के लिए नियमों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही दिव्य तथा उनका मनुष्य के रूप मे होने के नियम बताए गए है, दूर देश की यात्रा, जिसमें एक या एक से अधिक दिनों को दर्शना या मास या वर्ष आदि के लंबे समय या अवधि को दर्शाने के लिए नाटक के दिवसीय अंक के समापन मेन दर्शाया जाता है। अलगे अंक मे पात्र के नवीन स्थान मे पहुँचने और लोक व स्थान के दृश्यों को दिखाया जाता है, और सभी पात्रों का निश्चित स्थान नियम भी बताया गया है– जैसे कुबेर के दास, राक्षस, भूत–पिशाच आदि को हिमालय के निवासी मानते हुए, उनको हेमवत कहा जाता है।

गांधर्व और अप्सराओं का स्थान हेमकूट तथा तैतीस करोड़ देवी–देवताओं का निवास स्थान सुमेर पर्वत पर माना जाता है व श्वेत पर्वत पर पितर, दानव तथा दैत्यों का स्थान माना गया है तथा कथावसतू के अनुसार इन सभी के निवास स्थान को अंक मे दर्शाया जाता है और सभी को जम्बू दीप का ही अंग माना जाता है। नाट्य मे प्रयोग होने वाले सभी कानो की चार प्रवृत्तियाँ 1. आवन्ती, 2. दक्षिणात्या 3. पांचाली 4. मागधी। इस अध्याय मे इन्हें प्रवृत्ति कहे जाने का कारण भी भरत मुनि द्वारा बताया गया है और भरत मुनि द्वारा कहा गया है, कि स्थान, भाषा, भूषा, आचार–विचार आदि को वर्णित करने के कारण इसे प्रवृत्ति कहा है आवन्ती, दक्षिणात्या, पांचाली तथा मागधी, यह चार दिशाओं के सूचक है। इन्हीं के आधार पर राज्यों और स्थानों को प्रदर्शित किया जाता है। नाट्य रचना के दो भेद माने गए है– जैसे सुकुमार और आविद्ध आविद्ध के अंतर्गत युद्ध कि नीतियों व प्रदर्शन को बतलाया गया है। जिसमें अपनी शक्तियों इन्द्रजाल और माया जाल जैसी चीजों के उपयोग को प्रदर्शित किया गया है। इसमें देव, दानव तथा शौर्य आदि को दिखाया जाता है और दूसरा सुकुमार अभिनय जिसमे अभिनय ईशानकोण मे मुख रखते हुए किया जाता है, जिस तरफ वाद्यों का स्थान होता है। इसके पश्चात् लोकतथा नाट्य धर्मी लक्षणों को बताया गया है, बिना किसी बनावटी चरित्र के साथ समान्य और सादगी के साथ नाट्य प्रदर्शित करने वाले पात्र को लोकधर्मी बताया गया है, तथा जो प्राणी या किसी प्रकार के असमान्य भाव या लीला हो, परंतु मनोहर चेष्टाओं से युक्त होते हुए, नृत्य और स्वर अलंकारों का उचित प्रयोग करते हुए।

चरित्र का कुशलतापूर्वक निर्वहन हो उसे नाट्यधर्मी कहा है। इस प्रकार भरत के द्वारा इस अध्याय मे अंकों द्वारा होने वाले अभिनय के नियम तथा लक्षणों सहित व्याख्या की तथा नाट्यशास्त्र का कक्ष्या–प्रवृत्ति संबंधी अध्याय समाप्त होता है।

2:5:15 वाचिकाभिनय –

सार– भरत मुनि के द्वारा स्वर तथा व्यंजन संबंधी वाचिक अभिनय को उनके लक्षणों सहित व्यख्यित किया गया है। जिसे शोधर्थी द्वारा अपने समझ के अनुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इससे पूर्व के अध्याय मे अभिनय के निरूपण को वर्णित किया जा चुका है। इस अध्याय के अंतर्गत स्वर तथा व्यंजन के लक्षणों को वर्णित किया गया हैं व नाट्य के अंतर्गत संवाद के महत्व को बतलाया गया है। प्रस्तुत अध्याय मे कवि के द्वारा काव्य रचना आदि व पात्र द्वारा उसका उपयोग नेपथ्य की रचना, अंग तथा सभी प्रयोग होने वाले शब्दो के अर्थ के महत्व को बताया गया है, क्योंकि अभिनय को रुचिपूर्ण बनाने हेतु आवश्यक है, कि वाचिक अभिनय का प्रभावक होना आवश्यक हैं व शास्त्र का आधार शब्द को बताते हुए। शब्द के महत्व को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया हैं। वाचिक अभिनय के अंतर्गत नाम क्रिया संधि आदि के ज्ञान की आवश्यकता भी व्यक्त की गई हैं। नाट्य के दो भेंद संस्कृत और प्राकृत पाठ्य को बताया गया है व पाठ्य के विभिन्न आधारों के विषय मे विस्तारपूर्वक चर्चा की गई हैं। संधि, विभक्ति समास स्वर व्यंजन प्रत्यय उपसर्ग आदि को संस्कृत पाठ्य के आधार बताए गए हैं व इनके लक्षणो को वर्णित किया गया है। जिसमे 'अ' से आरंभ हो कर औ पर खत्म होने वाले 14 स्वरों और 'क' से आरंभ ओर 'ह' पर खत्म होने वाले वर्णो को व्यंजन के रूप में बताया गया हैं, और वह 14 स्वर इस प्रकार है – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ व व्यंजन इस प्रकार है– क, ख, ग, घ, ड़, च, छ, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह। इन सभी स्वर और व्यंजनों के उच्चारण की विधि को बताया गया है और सभी व्यंजन वर्णो को वर्गों मे विभाजित किया गया है और वर्णो को अघोष और सघोष मे विभक्त करते हुए। कंठ, ओष्ठ, दंत, जीभ, नासिका,तालु आदि के माध्यम से से उच्चरित होने वाले व्यंजनो का वर्णन किया गया है। इसके बाद व्यंजनो को उनके उच्चरित होने वाले वर्गों मे विभाजन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। क, ख, ग, घ, ड़ कंठ, च, छ, ज, झ तालु आदि। इस प्रकार सभी व्यंजनों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् भरत द्वारा स्वरों का

वर्णन किया गया है। स्वरों को ह्रस्व तथा दीर्घ में विभक्त किया गया है। इसके बाद नाम, क्रिया, उपसर्ग, निपात, तद्धित, संधि ऑर विभक्ति के विषय मे बताया गया हैं, नाम को संज्ञा भी हा गया है और 'सु' आदि प्रत्यय का वर्णन किया गया है और इसके पाँच प्रकार बताए गए है नाम की श्रेणियां सात और इसके करको की संख्या छः बताई गयी है। इसके बाद क्रिया या आख्यात का वर्णन है, जो पाँच सौ धातुओं को पच्चीस भागों मे विभाजित करने वाला कार्य है, जो कि संवाद में प्रयुक्त होने वाली संज्ञाओं पर निर्भर करती है व उपसर्ग के विषय मे चर्चा करते हुए कहा गया है, जो धातु के मूल द्वारा शब्दों को विशिष्ट रूप प्रदान करता है। इसी प्रकार निपात, प्रत्यय, तद्धित, समास, विभक्ति आदि का वर्णन किया गया है, और इसके बाद छन्द के भेदों का वर्णन किया गया है, क्योंकि छन्द के द्वारा ही पदकी रचना की जाती है।

इसमें चार पाद होते है और लघु और गुरु द्वारा ही इनका रूप निर्धारित किया जाता है। इसके 26 भेद कहे गए है और तीन अन्य प्रकार भी है, जो कि सम, अर्धसम, विषम और वृत्त बताए गए है व सभी 26 छन्दों के नामों का वर्णन किया गया है और गायत्री छन्द के 64, उष्णीक के 128, अनुष्टुप छन्द के 256 बृहती 51, पंक्ति 1024, त्रिष्टुप 2048, जगती 4016, अतिजगती 8192, शक्करी 16384, अतिशक्करी 32768, अष्टि 65536, अत्यष्टि 131072, धृति 262144, अतिधृति 521288, कृति 1048576, प्रकृति 2097152, आकृति 4194304, विकृति 8388608, संकृति 16777216, अतिकृति 33554432, उत्कृति 67108864। इस प्रकार भरत के द्वारा छन्द के योग से कुल 134217726 प्रमाण दिये गये है। इसी के अनुसार लघु और गुरु के चिन्हों का भी वर्णन दिया गया है। संपद, विराम, स्वर, पाद, स्थान आदि को बताया गया है। इस प्रकार भरत मुनि द्वारा इस अध्याय मे छन्दोंविधान को बताया गया है और छन्द विधान का यह अध्याय समाप्त होता है।

2:4:16 वृत्तिविधान

सार–छन्द का पात्रों के अनुसार उपयोग प्रस्तुत अध्याय में वर्णित किया गया है। भरत मुनि द्वारा समस्त छन्दों का उपयोग उदहरण सहित गुरू तथा लघु के वर्णों को व्यक्त किया गया है। जिसको अध्ययन के पश्चात् शोधार्थी द्वारा रखने का प्रयास किया गया हैं।

इससे पूर्व के अध्याय मे छन्द को बताया गया है, व इस अध्याय के अंतर्गत नाट्य–प्रयोग की विधि का वर्णन किया गया है। इसमें तनुमध्या का वर्णन किया गया है। इसे गायत्री छन्द

के वर्ग में बताया गया । जिसमें वर्णों को इस प्रकार व्यख्यित किया गया है। पाद के आरंभ के दो और अंत के वर्ण मे गुरु प्रयोग होता है। इसी प्रकार मकरशीर्षा मे पहले के चार वर्णो मे लघु और आखिरी के दो वर्ण मे गुरु होता है, और इसे भी गायत्री छन्द के अंतर्गत रखा जाता है।

इसके बाद मालती में अगर छः अक्षरों का पाद होता है, तो उसमे द्वितीय तथा पंचम लघु होगा और बाकी गुरु बताए गए है। इसी प्रकार मालिनी मे भी दूसरा लघु बाकी गुरु होगे और इसी प्रकार क्रमशः उद्धता, भ्रमरमाला, सिहलेखा, मत्तचेष्टित, विद्यल्लेखा, चित्तविलासित, मधुकरी, उत्पलमाला, मयूर सारणी, दोधक, मोटक, इन्द्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, रथोद्धता, स्वागता, शालिनी, तोटक, कुमुदप्रभा, चंद्रलेखा, प्रमिताक्षरा, वंशस्थ, हरिणप्लुता, कामदत्ता, अप्रमेय, पद्मिनी, पुटवृत्ता, प्रभा वती, प्रहर्षिणी, मत्तमयूर, बसंततिलका, शरभा, नांदीमुखी, गजविलासित, प्रवरललिता, शिखरिणी, वृषभचेष्टित, श्रीधर, सुवदना, स्त्रग्धारा, मद्रक, अश्वललिता, मेघमाला, क्रौंचपदी, भुजंगविजृम्भित, विषम तथा अर्धसमवृत्त, पथ्या, सर्वविषमपथ्या, विपरीत पथ्या, चपला, विपुला, पथ्यावक्र, केतुमती, अपरवक्त्र पुष्पिताग्रा, उदगता। इसके पश्चात आर्या के पाँच लक्षणों को बताया है। इस प्रकार भरत द्वारा छन्द तथा काव्य का वर्णन प्रस्तुत अध्याय मे दिया गया है। यह छन्द के नाट्य प्रयोग का अध्याय समाप्त होता है।

2:4:17 काव्यलक्षणादि (वाचिकाभिनये)

सार– इस अध्याय में काव्य के छत्तीस लक्षण बताए गए है, और साथ ही इस अध्याय के अंतर्गत अलंकारों के आकार–प्रकार आदि का भी वर्णन किया गया है, जिसे इस अध्याय के अंतर्गत समझने का प्रयास किया गया है, और शोधार्थी द्वारा वर्णित किया गया है।
इसके पूर्व के अध्याय के अंतर्गत नाट्य प्रयोग में होने वाले वृत्तिविधान की पूर्ण चर्चा की गई है। प्रस्तुत अध्याय नाट्य में उपयोग होने वाली रचनाओं पर आधारित है। इस अध्याय के अंतर्गत नाट्यरचना के छत्तीस लक्षण काव्य की दृष्टि से बताये गए है–

1. भूषण	**2.** अक्षर–संघात	**3.** शोभा	**4.** उदाहरण
5. हेतु	**6.** संशय	**7.** द्रष्टान्त	**8.** प्राप्ति
9. अभिप्राय	**10.** निदर्शन	**11.** निरुक्त	**12.** सिद्धि
13. विशेषण	**14.** गुणातिपात	**15.** गुणातिशय	**16.** तुल्यतर्क

17. पदोच्चय	**18.** दिष्ट	**19.** उपदिष्ट	**20.** विचार
21. विपर्यय	**22.** भ्रंश	**23.** अनुनय	**24.** माला
25. दाक्षिण्य	**26.** गर्हण	**27.** अर्थापत्ति	**28.** प्रसिद्धि
29. पृच्छा	**30.** सारूप्य	**31.** मनोरथ	**32.** लेश
33. संक्षेप(संक्षोभ)	**34.** गुणकीर्तन	**35.** अनुक्त सिद्धि	**36.** प्रियवचन(प्रियोक्ति)

इन छत्तीस गुणों की चर्चा के पश्चात् अलंकारो के लक्षणों को बताया गया है। नाट्य प्रयोग के चार अलंकारों बताये गए है जो की इस प्रकार है—

उपमा रूपकं चौव दीपकं यमकं तथा।
काव्ययस्यैते ह्यललंकारश्र्चत्वारः परिकीर्तितः।।(1)

अर्थात् उपमा, रूपक, दीपक, तथा यमक यह चार अलंकार नाट्य में प्रयोग किये जाते हैं। जहाँ दो पदार्थों की तुलना की जाये, वह उपमा अलंकार कहा जाता है। इसके पांच भेद माने जाते है— **1.**प्रशंसा, **2.**निंदा, **3.**कल्पिता, **4.**सद्दशी, **5.**किंचित—सद्दर्शी। दीपक के समान ही विषम शब्दों को एक वाक्य में समन्वित करना दीपक अलंकार कहलाता है। तथा अपने ही वर्ण से बन्ने वाला समान अंग के गुणों से युक्त रूप रूपक कहलाता है। और वचनों की पुनर्कथन यमक कहलाता है। नाटक में प्रयोग होने वाले यमक के 10 भेद[2] बताये गए है— **1.**पादान्त—यमक, **2.**कञ्ची—यमक, **3.**समुद्र—यमक, **4.**विक्रान्त—यमक, **5.**चक्रवाल—यमक, **6.** संदष्ट—यमक, **7.**पादादि—यमक, **8.**आम्रेडित—यमक, **9.**चतुर्व्यवसित—यमक, **10.**माला—यमक। इसके पश्चात काव्य के 10 दोषों का वर्णन किया गया है—

गूढ़ार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नर्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम्।
न्यायादपेतं विषमं विसन्धि शब्दच्युतं वै दश काव्यदोषाः।।(3)

अर्थात् 1.गूढार्थ, 2.अर्थान्तर, 3.अर्थहीन, 4.भिन्नार्थ, 5.एकार्थ, 6.अभिप्लुतार्थ, 7.न्यायाद्पेत,8. विषम, 9.विसन्धि, 10.शब्दच्युत यह सभी काव्य दोष माने गए है। नाटक के अर्न्तगत 10 ही काव्य गुण माने है, जो इस प्रकार है—

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत—नाट्यशास्त्रम/अध्याय—17/श्लोक—43
(2)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत—नाट्यशास्त्रम/अध्याय—17/श्लोक—61—63
(3)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत—नाट्यशास्त्रम/अध्याय—17/श्लोक—87

श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते।।[1]

अर्थात् **1**:श्लेष, **2**:प्रसाद, **3**:समता, **4**:समाधि, **5**:माधुर्य, **6**:ओज, **7**:पदसौकुमार्य (सुकुमारता), **8**:अर्थव्यक्ति, **9**:उदारता, **10**:कान्ति इन सभी को काव्य के गुण माना गया है। इसके पश्चात् रस के अनुरूप अलंकार, छन्दों व अक्षरों का वर्णन तथा विधान को बताया गया है। सत्रहवां अध्याय समाप्त होता है, परन्तु सत्रहवां अध्याय के समाप्त होने पर उसके अनुबंध के रूप में एक अध्याय और बाबूलाल शुक्ल शास्त्री की पुस्तक में और जोड़ा गया है, जिसमें नाटक के अंगीभूत 36 लक्षणों[2] का वर्णन आचार्य अभिनवगुप्त के वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो कि इस प्रकार है–

1. विभूषण	**2.** अक्षरसंघात	**3.** शोभा	**4.** अभिमान
5. गुणकीर्तन	**6.** प्रोत्साहन	**7.** उदाहण	**8.** निरुक्त
9. गुणानुवाद	**10.** अतिशय	**11.** हेतु	**12.** सारुप्य
13. मिथ्याध्यवसाय	**14.** सिद्धि	**15.** पदोंच्चय	**16.** आक्रन्द
17. मनोरथ	**18.** आख्यान	**19.** याञ्चा	**20.** प्रतिषेध
21. पृच्छा	**22.** दृष्टान्त	**23.** निर्भासन	**24.** संशय,
25. आशी	**26.** प्रियोक्ति	**27.** कपट	**28.** क्षमा
29. प्राप्ति	**30.** पश्यतापः	**31.** अनिवृत्ति	**32.** उपपत्ति
33. युक्ति	**34.** कार्य,	**35.** अनुनीति(अनुनय)	**36.** परिदेवन

इसका पूर्ण विधान बताया गया है, यह अध्याय समाप्त होता है। जिसके अंतर्गत काव्य रचना के गुण–दोषों का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं।

2:5:18 भाषा विधान

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत प्राकृत भाषा के विषय मे चर्चा करते हुए, उसके लक्षणों की व्यखाया प्रस्तुत की गई है। जिसे शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–17/श्लोक–95
(2)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–17अनुबन्ध/श्लोक–1–4/पृ0–313

इससे पूर्व के अध्याय मे भरत के द्वारा संस्कृत के पाठ्य को वर्णित किया गया है, तथा इस अध्याय मे प्राकृत पाठ्य के लक्षणों को बताया गया है। संस्कृत पाठ्य को गुणों से रहित कर दिया जाए, तो उसे प्राकृत पाठ्य कहा गया है, जिससे यह एक अपना भिन्न स्वरूप प्राप्त करती है। प्राकृत पाठ्य के तीन भेद भरत मुनि द्वारा व्यखटीय किए गए है। समान शब्द अर्थात् त्तसम विभ्रष्ट अर्थात् तदभव और देशी समान रूप से प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द त्तसम। जिनका प्रयोग संस्कृत तथा प्राकृत दोनों ही पाठ्य में होता है, स्वर के आधार पर होने वाले परिवर्तनों से वाक्यों का प्रयोग होने वाले शब्दों को संबद्ध करने पर जो रूप प्राप्त होता है, वह तदभव कहा जाता है। इसके पश्चात् भरत के द्वारा प्राकृत भाषा के नियमों का वर्णन किया गया है। जिन स्वरों में विसर्ग का प्रयोग किया गया हो अर्थात् "ए" "ओ" "ऐ" "औ" जैसे अनुस्वार स्वरों का उपयोग हुआ हो, उसका प्रयोग प्राकृत भाषा के अंतर्गत नहीं किया जाता है, तथा प्राकृत पाठ्य में "क" "च" तथा "त" वर्ग का भी प्रयोग नहीं होता है। प्राकृत पाठ्य के अंतर्गत प्रत्येक वर्ण के उपयोग के निश्चित नियमों को भरत मुनि द्वारा बताया गया है– जैसे "रे" को इस प्रकार प्रयोग करना है, जिसमें "रे" के नीचे या ऊपर किसी भी वर्ण का प्रयोग नहीं किया जाएगा परंतु मद्र, वोद्रह, ह्रद आदि को अपवाद स्वरूप माना है। इसी प्रकार "ह" वर्ण मे कई वर्ण परिवर्तित हो गए है– जैसे वधू–बहू, कथा–कहा आदि शब्द है, जो कि हकार देश के कहे जाते है। इसी प्रकार "ष" "छ" मे परिवर्तित होता है और "ट" वर्ण को "ड" मे परिवर्तन के लक्षण बताए है।

इस प्रकार भरत के द्वारा असंयुक्त वर्णों के लक्षणों को वर्णित किया गया है। इसके पश्चात् संयुक्त व्यंजन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें ग्रीष्म का गिम्ह हो जाता है। भाषाओं के चार प्रकार बताए गए है, जो कि प्राकृत तथा संस्कृत भाषा के अंतर्गत ही रखी गई है। जिनके नाम इस प्रकार है– 1ः अति भाषा 2ः आर्यभाषा 3ः जाति भाषा 4ः जात्यन्तरी भाषा तथा भाषा के प्रयोगों को भी वर्णित किया गया है। जैसे देवों की अतिभाषा को भाषा, आर्यभाषा को भूपालों की भाषा तथा इन भाषाओं का का प्रचलन साथ दीपों तक बताया गया हैं। नाट्य के अंतर्गत जाति भाषा को प्रयोग किया जाता है, जिसके दो भेद बताए है। यह अनार्य लोगों के द्वारा प्रयोग की जाती है, तथा यह भारतीयों द्वारा प्रयोग मे लायी जाती है। जात्यन्तरी भाषा जंगल के निवासियों और गाँव मे रहने वाले लोगों द्वारा प्रयोग की जाती है तथा नाट्य के पाठ्य का वर्णन करते हुए, पाठ्य के भी दो प्रकार बताए है, जो कि संस्कृत तथा प्राकृत

में होते है, धीरोद्धत, धीरललित के अंतर्गत आने वाले नायक संस्कृत में पाठ्य करते हैं व यह सभी आवश्यकता पड़ने पर प्राकृत में भी पाठ्य कर सकते है। किसी उत्तम पात्र के पद या दरिद्रता के कोप से अर्थात् मदमत्त या विकल परिस्थिति में संस्कृत भाषा का प्रयोग न करके प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार पात्रों की मनःस्थिति के अनुसार भाषा के प्रयोग के विधान को वर्णित किया गया है। साथ मे सात मुख्य भाषाओं का वर्णन किया गया है– अर्धमागधी, मागधी, प्राच्या, आवन्ती, सूरसेनी, वाल्हिका तथा दक्षिणात्या तथा क्षेत्रों के अनुसार भाषा के विधान को वर्णित किया गया है और उसके व्यवहारिक गुणों को बताया है। विदूषक, राजा, सैनिक, जुआरी नगरमुख्य, उत्तर भाग के निवासी, दक्षिण के निवासी वन के निवासी, सभी का वर्णन किया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत विभाषाओं का भी वर्णन किया गया है। गंगा पार था समुद्र के मध्यवर्ती प्रदेशों मे निवास करने वाले प्रदेशों में एकार की अधिकता पायी जाती है। विंध्याचल तथा समुद्री क्षेत्रों मे नकार की अधिकता मिलती है। इस प्रकार भरत मुनि के द्वारा भाषाविधान के अध्याय के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के भाषा प्रयोग तथा उसके उच्चारण आदि के समस्त विधान को बताया गया।

2:4:19 सम्बोधन तथा काकुस्वरव्यंजन

सार– इस अध्याय में उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को तथा पात्रों के द्वारा किए जाने वाले सम्बोधन का वर्णन किया गया है। जिसमें सभी लक्षणों और उनके विधानों को बताने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

इसके पूर्व के अध्याय में भाषा के विधान को बतलाया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत सम्बोधन अर्थात् किस प्रकार किसका आवाहन करना है, या बुलाना है, इसका विधान भरत मुनि द्वारा ऋषिगणों को बतलाया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत उत्तम, मध्यम और अधम पात्रों के द्वारा होने वाले संबोधन का विधान कहा गया है। प्रत्येक पात्र के सम्बोधन के कुछ निश्चित शब्द होते है, और उनका ही प्रयोग उन पात्रो द्वारा किया जाना चाहिए। उच्च स्थान पर स्थित विद्वान, महात्मा, देवता तथा गुरुजनों को 'भगवान' शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता है व उनकी भार्याओं (पत्नियों) को 'भगवती' शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण को 'आर्य' राजा को 'महाराजा', शिक्षक को 'आचार्य', अपने से बढ़े या बुजुर्ग मनुष्य को 'तात' नाम से सम्बोधन होता है, ब्राह्मण को यदि कोई पद या मंत्री राजा द्वारा नियुक्त कर दिया जाता है, तो वह 'अमात्य' या 'सचिव' से सम्बोधित होता है, समान्य मनुष्य

को उसके नाम से सम्बोधित किया जाता है। अधम व्यक्ति के लिए उत्तम व्यक्ति द्वारा असमान्य तरीके से उसको उसके नाम से सम्बोधित किया जाता है। अधम के अंतर्गत ही जो जिस व्यवसाय को करता हो, उसको उसी कर्म के अनुसार सम्बोधित किया जाता है। सामान्य व्यक्ति को 'माघ' और उससे निम्न स्थिति के व्यक्ति को 'मारिष' नाम से सम्बोधित किया जाता है, बौद्ध जैन आदि को 'भदंत', प्रजा द्वारा अपने राजा को 'देव' कह कर संबोधन दिया जाता है। इस प्रकार राजा, महाराजा, रानियों, ब्राह्मणों, क्षत्रिय, शिल्पकार, कलाकार आदि को उनके स्थान व पदों के अनुरूप ही सम्बोधित किया जाता है, और इसी सम्बोधन के विधान में यह भी वर्णित है। उच्च, मध्यम व निम्न को उसके कर्म के अनुसार व उनके कुल या गोत्र के अनुसार भी संबोधित किया जाता है। नाट्य के अंतर्गत इसी विधान के अनुरूप पात्रों के नामों का निर्धारण करना चाहिए।

इस प्रकार नाट्याचार्य को छः अलंकारों वाले पाठ्य को करना चाहिए। इसके पश्चात् पाठ्य के गुणों व लक्षणों का कर्म बतलाया गया। इसके अंतर्गत सात स्वर– षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद और इन्हीं सात स्वरों के अनुसार रसों के विषय में बताया है। साथ में तीन स्वर स्थान भी बताये है– उरस्थल, कंठ तथा शीर्ष वीणा तथा मानव में भी यह तीन स्वर स्थान माने गए है– दूर स्थित व्यक्ति को बुलाने में शीर्ष, उससे समीप में कंठ तथा समीप खड़े व्यक्ति को बुलाने पर छाती पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार ये तथ्य को समझना चाहिए कि नाद से स्वर की उत्पत्ति हुई है। जब कोई भी बोलने की चेष्टा करता है, तो सबसे पहले यह चेष्टा मानव को मानसिक तौर पर महसूस होती है, फिर यह शरीर में स्थित अग्नि को प्रस्फुटित करती है और फिर वह पवन को प्रेरित करते है, तो नाभि से उठ कर वह ध्वनि हृदय, कंठ एवं सिर से मुख के द्वारा बाहर आती है। मन्द्र नाद हृदय से, मध्य नाद कंठ द्वारा और तार नाद मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न होता है। पाठ्य के चार वर्ण भी बताये गए हैं, जो कि उदात्त, अनुदात्त, स्वरित एवं कम्पित है। यह भी रस आधारित होते है। श्रृंगार व हास्य में स्वरित, वीर, रौद्र व अद्भुत रस में उदात्त, करुण, वात्सल्य एवं भयानक रस में इस सभी वर्णों को देखा जा सकता है।

इसके पश्चात् दो प्रकार के काकू का भी वर्णन बताया है। काकू के दो भेंद साकांक्ष और निराकांक्ष जिसमें अर्थ पुर्णतः प्रकट न होता हो, वह साकांक्ष और जो अर्थ को पूर्णरूप में प्रकट करें वह निराकांक्ष काकू भेदों के पश्चात् छः अलंकारों का वर्णन किया गया है। उच्च,

दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलंबित इसके अंतर्गत काकू के प्रयोगों को बताया गया है। प्रत्येक अलंकार के साथ किस प्रकार काकू का प्रयोग होना है, इसका वर्णन किया गया है व उच्चारण के भी छः अंग वर्णित किया गया है, विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबंध, दीपन तथा प्रशमन इसके पश्चात् पाठ्य के अंतर्गत प्रयोग किये जाने वाले व्यंजनों का वर्णन किया गया है। कृष्याक्षर का वर्णन करते हुए कहा है, कि दीर्घाक्षर को कृष्याक्षर कहा गया है, जो कि व्यंजन आकार और ए, ऐ, औ आदि में समन्वित है। इन्ही का अनुसरण करते हुए, नाट्य का पाठ्य का विधान कहा गया है। जिसमें सम्बोधन, स्वर, व्यंजन, काकू व अलंकार को महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रकार उन्नीसवां अध्याय समाप्त होता है।

2:4:20 दशरुपनिरुपण

सार– इस अध्याय मे रूपक दसों भेदों का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसे इस अध्याय के अंतर्गत समस्त उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया गया है। जिसका प्रतिवेदन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

इससे पूर्व के अध्याय में स्वर, काकू, व्यंजन तथा अलंकार के विषय में चर्चा की गई है। प्रस्तुत अध्याय मे भरत मुनि द्वारा रूपक के दस भेदों की व्याख्या उनके नाम, प्रयोग तथा लक्षणों के अनुसार की है। रूपक के दस(1) नाम इस प्रकार है **1.** नाटक, **2.** प्रकरण, **3.** अंक, **4.** व्यायोग, **5.** भाण **6.** समवाकार, **7.** वीथी, **8.** प्रहसन, **9.** डीम, **10.** ईहामृग। इसके पश्चात भरत मुनि द्वारा इन सभी के लक्षणों की व्यखाया की है। वृत्तियों को नाट्य रचनाओं का आधार माना जाता है। काव्य रचना के रूप में प्रयोग अत्यंत आवश्यक माना गया है। जिस प्रकार ग्राम की उत्पत्ति के लिए जाति और श्रुतियों को आवश्यक माना गया है। ठीक उसी प्रकार सभी वृत्तियों के मध्याम से ही नाट्य और प्रकरण पूर्ण होते हैं। इन लक्षणों के पश्चात् नाटक में नायक व अन्य पात्रों की भी संख्या को भी पूर्व में ही निश्चित कर दिया जाता है। नायक के परिवार आदि की संख्या को सीमित ही रखते हुए, चार या पाँच तक ही रखा जाता है। अन्य डीम आदि की संख्या दस या बारह तक राखी जाती है।

रंगमंच पर महल, रथ आदि को भी एक निश्चित रूप में ही प्रयोग किया जाता है, जैसे इन विशाल वस्तुओं को चित्र आदि या पात्रों की चाल की हलचल द्वारा दर्शाया जाता है, परंतु

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्रम / अध्याय–20 / श्लोक–2–3

छोटी और निम्न वस्तुओं के लिए उनकी आकृति का प्रयोग पात्रों द्वारा किया जाता है। इसके अलावा मंच पर सेना व अन्य बड़े प्रदेशों और क्षेत्र को कई मनुष्यों के प्रवेश और हलचल के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाता है। इन सभी लक्षणों को भरत द्वारा नाटक नामक रूपक के प्रकार के अंतर्गत वर्णित किया गया है। इसी प्रकार प्रकरण के अंतर्गत बताया गया है कि कवि कि वह काल्पनिक रचना जो रूपकों को ध्यान में रखते हुए, नायक को कल्पित रूप प्रदान करें। उसे प्रकरण के अंतर्गत व्यखायित किया जाना चाहिए अर्थात् कई विधियों द्वारा चरित्र को प्रदर्शित करना अलग–अलग पात्रों का उनके चरित्र के अनुसार दर्शाया जाना जैसे दास, विट, श्रेष्टि प्रतरों मे वेश्या आदि को सम्मिलित किया जा सकता है, परंतु इसमें भी कुलस्त्री का चरित्र कम मात्र मे ही प्रस्तरित किया जाता है। सचिव, श्रेष्ठजन, ब्राह्मण आदि हो तो वहाँ वेश्या आदि को स्थान नहीं देना चाहिए और उसी के अनुरूप संवाद को किया जाता है।

नायक तथा वेश्या के दृश्य के अंतर्गत कुलांगना का प्रवेश वर्जित माना गया है। यदि कुलांगना और वेश्या का संवाद होता है, तो उसमें भाषा का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार भरत मुनि के द्वारा नाटक, नाटिका तथा प्रकरण के लक्षणों को बताया गया। समवाकर के विषय में बताते हुए कहा है, कि असुरों और देवताओं के मध्य हुए एक प्रख्यात कथावस्तु का प्रयोजन विशेष परिस्थिति मे होना। इसमें त्रिविधिक कपट, विर्द्व तथा श्रृंगार होता है व नायक अत्यंत प्रसिद्धि को प्राप्त किए होता है तथा कपट विर्द्व और श्रृंगार के लक्षणों को वर्णित किया गया है। समवाकर मे छन्द का भी प्रयोग होता है।

इसी प्रकार ईहागृह का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। डीम के अंतर्गत कथावस्तु मुख्य होती है तथा इसमें चार प्रकार के अंक और छः रसों को रखा जता है। वीथी का वर्णन करते हुए बताया गया है कि इसके अंतर्गत एक या दो पात्रों को रखा जाता है तथा उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को रखा जाता है। इसके तेरह भेद बताए है उद्‌घात्यक, अवलगित, अवस्प, असत्प्रलाप, प्रपच, नालिका, अधिबल, छल, मृदव, त्रिगत, वाक्केलि, व्यवहार, गण्ड। इन सभी का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात लास्य के बारह भेद कहे है। गेयपद, त्रिमूढ, प्रच्छेदक, आसीन, स्थितपाठ्य, पुष्पगंडिका, द्विमुढ़क, सैन्धव, विचित्रपद, उत्तमोत्त्मक , भावित, उक्त–प्रयुक्त, तथा इन भेदों को भी वर्णित किया गया है। इस प्रकार सभी दस रूपकों का वर्णन किया गया है।

2:4:21 सन्ध्यग्ड़निरुपण

सार– नाट्य की कथावस्तु नाट्य का प्राण मानी जाती हैं। जिसकी रचना के विधान को भरत मुनि द्वारा समझाने का प्रयास किया जा रहा है। जो इस अध्याय मे वर्णित शोधार्थी द्वारा किये जा रहे है।

कथावस्तु को नाट्य का प्राण माना जाता है। जिसका वर्णन इस अध्याय में भरत मुनि द्वारा किया गया है। भरत द्वारा इसकी पूर्ण चर्चा करते हुए, इसके दो भेद– 1:अधिकारिक तथा 2:प्रासंगिक बताये गए है। जिस कथावस्तु को किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निर्मित किया जाये। वह अधिकारिक तथा अन्य को प्रासंगिक कहा गया है। इस अधिकारिक कथावस्तु में नायक द्वारा किये जाने वाले कार्य से फल की प्राप्ति की जाति हैं। जिसमें कार्य को पांच भागों में विभक्त किया जाता है, जो कि– 1.प्रारंभ, 2.प्रयन्त, 3.प्राप्ति–सम्भव, 4.नियत–फलप्राप्ति तथा 5.फलप्राप्ति[(1)]। इसके बाद इन सभी भेदों के लक्षणों को भरत मुनि द्वारा व्याख्यित किया गया है। इनमें संधि का प्रयोग तथा उसके परित्याग की विधि को भी बताया गया है। इसके पश्चात पांच अर्थ प्रकृति का वर्णन किया गया है, जो– 1.बीज, 2.बिंदु, 3.पताका, 4.प्रकरी, और 5.कार्य[(2)] है। इन सभी के भी लक्षण इस अध्याय में कहे गए है। इसमें अनबंध पताका में पांच स्थान पताका के लक्षण बताये है, और नाट्य में प्रयोग होने वाली पांच संधियों की चर्चा की गई हैं, जो कि– मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, तथा निर्वहण है। इसके बाद इक्कीस प्रकार की अंग संधियों की चर्चा की गयी है–

1. साम	**2.** भेद	**3.** प्रदान	**4.** दण्ड
5. वध	**6.** प्रत्युत्पन्नमत्तिव	**7.** गोत्रस्खलित्त	**8.** साहस
9. भय	**10.** घी	**11.** माया	**12.** क्रोध
13. ओज	**14.** संवरण	**15.** भ्रान्ति	**16.** हेत्ववधारण
17. दूत	**18.** लेख	**19.** स्वप्न	**20.** चित्र
21. मद[(3)]			

---

(1)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–20/श्लोक–7
(2)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–21/श्लोक–19
(3)शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्रम/अध्याय–21/श्लोक–47–49

वह घटनाएं जो अपने मूल प्रदेष में घटित होती हैं। वह उपसंधियों के अंतर्गत आती हैं।

2:4:22 वृत्तिविधान

सार– प्रस्तुत अध्याय मे वृत्तियों की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए। मधु–कैटभ वध का वर्णन प्रस्तुत किया गया है तथा वृत्तियों के लक्षणों की चर्चा की गई है।

भरत मुनि द्वारा वृत्तियों की उत्पत्ति की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की है, जो कि नाट्य स्वरूप आदि से पूर्णतः सम्बन्धित है। इस अध्याय के अंतर्गत जगत के पालनहार भगवान विष्णु द्वारा किये गए। मधु–कैटभ नामक दो दैत्यों के साथ हुए, बहु–युद्ध तथा उनके वध के द्वारा दो वृत्तियों का उद्‌भव हुआ और साथ ही इस युद्ध में उपयोग किये जाने वाले शास्त्रों को न्याय कहा गया। जब इस युद्ध के दौरान भगवान विष्णु द्वारा धरती पर अपना पैर रखा गया, तो धरती का भार बढ़ गया, उसे भारती–वृत्ति कहा गया। जब धनुष की टंकार हुई तो उसे सात्वती–वृत्ति तथा भगवान द्वारा चल रही, इस लीला में अपने केशों को बांधा गया तो उसे कौशिकी वृत्ति कहा गया। इस युद्ध में जब युद्ध के दौरान दोनों दैत्य भगवान विष्णु को अपशब्द बोलने लगे और उनकी न्रिदा करने लगे तो उससे समुद्र में कम्पन होने लगा और इससे भगवान ब्रम्हा के चित्त को इन अपशब्दों से आच्छा नई लगा, तो ब्रह्माजी ने विष्णु जी से आग्रह किया कि अब इनका वध कर इन्हें खत्म कर दीजिये, तो भगवान विष्णु ने बताया की यह सब मेरी ही की गई सृष्टि है, जिससें पात्रों के भाषण का विकास हो और इन दैत्यों का संघार मैं अभी कर देता हूँ। इन वृत्तिओं को वेदों से ग्रहण इस प्रकार किया गया है–ऋग्वेद से भारती वृत्ति का उद्‌भव, यजुर्वेद से सात्वती वृति की उत्पत्ति, सामवेद से कैशिक वृत्ति की उत्पत्ति तथा अथर्वेद द्वारा शेषवृत्ति की उत्पत्ति बताये गई है, तथा इन सभी वृत्तियों के लक्षण कहे गए है। इनके लक्षणों में इन वृत्तियों के भेदों के भेद भी बताये गए हैं– जैसे भारती वृत्ति के चार, सात्वती वृत्ति के चार, कैशिक तथा शेष वृत्ति के भी चार–चार भेदों को वर्णित किया गया है और इन सभी का रस पक्ष भी विस्तार से बतलाया गया है। इस प्रकार वृति की उत्पत्ति तथा भेदों के विषय में पूर्ण चर्चा को इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

2:4:23 आहार्य अभिनयाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत आहार्य अर्थात् वेश–भूषा को वर्णित किया गया है। जिसे पात्र की भूमिका के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

आहार्य शब्द का अर्थ वेशभूषा से लिया जाता है, और नाट्य भी आहार्य के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता। इस कारण आहार्य एक अत्यंत नाट्य का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जिसका पूर्ण विवेचन भरत मुनि द्वारा मुनियों को बताया गया है। नाट्य के अंतर्गत स्त्री, पुरुष, सजीव, निर्जीव, सभी की अलग अलग भूमिका होती है, और उसी के अनुरूप उनका आहार्य निर्धारित होता है। इस कारण निर्देशक को आहार्य या नेपथ्य विधान का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक हैं। नेपथ्य की चार विधाएं 1.वस्तु निर्माण, 2.अलंकरण, 3.अंगरचना तथा 4.जीवित प्राणी। इसमें पुस्त के अंतर्गत भी तीन भेद बताये है– जिनके सन्धिमपुस्त में उपयोग होने वाली बांस, चमड़ा आदि। वस्तु व्याजिम के अंतर्गत यंत्रों द्वारा बन्ने वाली वस्तुए व वेष्टिम के अंतर्गत यान, विमान, कवच आदि। नाट्य प्रयोग की वस्तुओं का निर्माण होता है। अंलकर के अंतर्गत आभूषण, वस्त्र आदि का उपयोग बताया गया है। जिनमें माला के प्रकार, जिनमें बंधने वाली माला, पहन्ने वाली माला, आदि अलग–अलग प्रकार की मालाओं का वर्णन दिया गया है। इसमें स्त्री तथा पुरुषों के अलग–अलग आभूषण बताये गए है। जाति तथा वर्ग के अनुसार आभूषण, कर्म तथा कार्य के अनुसार आभूषण, पद तथा योग्यता अनुसार आभूषण आदि का वर्णन किया गया है। जिनमें विभिन्न प्रकार के रत्नों, मणियों, मुकुट, चूड़ामणि, केश आभूषण, कुंडल, ग्रीवालंकार, उँगलियों के आभूषण, भुजा के आभूषण जिसमें बाजूबंद आदि, कलाई के आभूषण, कोहनी के आभूषण, वक्ष के आभूषण, मस्तक, नेत्र, दांत, बाहू, पैरों के आभूषण पाजेब, पायल, घुंघरू आदि शरीर के प्रत्येक अंगों के लिए भिन्न–भिन्न आभूषण बताये गए है।

साथ ही उनकी बनावट का भी वर्णन किया गया है, व पद के अनुसार सभी के आभूषण व रत्न भी अलग–अलग है। नायिका, दासी, दुति, भिक्षुणी, रानी आदि सभी क लिए विविध आभूषण हैं, जो उस पात्र को उसके वस्त्र, अभूषण व रत्न द्वारा उसको पहचाना जाता हैं। प्रत्येक पात्र का उसकी अवस्थानुसार वेष निर्धारित किया जाता है। अंग रचना के अंतर्गत पुरुष पात्रों को अपने अंगों को रंगों द्वारा रंगना होता है, जिसमें पात्रों क अनुसार नीला, सफेद, पीला तथा लाल रंग उपयोग में लाया जाता है, व इन ही चार रंगों के मिश्रण द्वारा कई अन्य रंगों का भी निर्माण पात्र की आवश्यकता अनुसार किया जाता हैं।

इसके पश्चात् प्राणियों के विषय में भरत मुनि द्वारा चर्चा की गई हैं। जिसमें सजीव तथा निर्जीव पदार्थों की चर्चा की गई हैं। सांस लेने वाले सभी जीव सजीव श्रेणी में रखे गए हैं, व स्त्रियों द्वारा धारण किये जाने वाले प्राकृतिक रूपों को भी सजीव के अंतर्गत स्थान दिया

गया हैं। जिनमें नदी, समस्त जल राशियों को इसमें स्थान दिया गया हैं। अजीव या निर्जीव के अंतर्गत पर्वत, महल आदि अप्राकृतिक वस्तुओं को इस श्रेणी में रखा जाता हैं। इसके पश्चात रंगों के माध्यम से समस्त नक्षत्र, ग्रहों, देव, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पितर, राक्षस, आदि को दर्शाया जाता है, व मानव वर्ण को जम्बूद्वीप के निवासी बता उनको गौण वर्ण या सुनहरे रंग से दर्शाया जाता है, और इसमें रंगो के आधार पर उनके पद को बताया जाता हैं। जिसमें उनकी जाति, वर्ग, कर्म पद आदि की व्याख्या इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है। इन्हीं वर्णों के आधार पर उनके परिधान निर्धारित किये जाते है। यह परिधान उसी अनुसार रंगों को निर्धारित करते है, और कर्म अनुसार ही उनके शस्त्रों को निर्धारित किया जाता है, व उस शस्त्र का आकार भी उसी अनुरूप होता है। इस प्रकार आहार्य, अलंकार, परिधान, वर्ण तथा शस्त्रों में पूर्ण कुशल होकर ही नायक को रंगमंच पर प्रवेश करना चाहिए। यह अध्याय पूर्णतः रंगमंच के प्रत्येक आहार्य को व्यक्त करता है। जिसके पूर्ण वर्णन भरत मुनि द्वारा किया गया है।

2:4:24 सामान्य अभिनयाध्याय

सार— अंग वाणी तथा सत्व द्वारा होने वाले अभिनय की चर्चा इस अध्याय मे की गई है, जिसमें सत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है।

पात्र के अंग, वाणी व सत्व के मध्यम से होने वाले अभिनय को सामान्य अभिनय कहा है। जिसमें से सत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जिसमें सत्व की अधिकता हो उसे उत्तम, समान रूप में हो उसे मध्यम व जिसमें सत्व रहित हो अधम कहा गया है। सत्व के द्वारा रस व भावों की अभियक्ति होती है, जो चित्त से स्वतः ही उत्पन्न होते है। इस अध्याय में शरीर में होने वाले बदलाव में अंगज अलंकार के तीन स्वभाविक रूप में होने वाले बदलाव के सहज अलंकार के दस व अन्त्यज के सात भेद बताये है व स्त्रियों में इसी आधार पर सत्व द्वारा भाव, भाव द्वारा हाव तथा हाव द्वारा हेला उत्पन्न होता है। इसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है, कि किस प्रकार किस अलंकार की उत्पत्ति होती है व स्त्रियों के स्वभावज अलंकार के अंतर्गत दस भेद बताये है 1. लीला, 2. विलास, 3. विच्छति, 4. विभ्रम, 5. किलकिंचित्, 6. मोहायित, 7. कुहमित, 8. बिब्बोक, 9. ललित, 10. विहल तथा इनका पूर्ण विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

इसके बाद अयत्नज अलंकार के अंतर्गत सात भेद बताये गए है जो कि– 1:शोभा, 2:कान्ति, 3:दीप्ति, 4:माधुर्य, 5:धैर्य, 6:प्रागल्म्य, 7:औदार्य। इसके लक्षणों को वर्णित किया गया है व पुरुषों के स्वाभाविक गुण आठ बताये है जो कि इस प्रकार है– 1:शोभा, 2:विलास, 3:माधुर्य, 4:स्थैर्य, 5:गाम्भीर्य, 6:ललित, 7:औदार्य तथा 8:तेज इन आठों गुणों को अर्थ अहित स्पष्ट किया गया है। सत्व के अभिनय को बताने के पश्चात् शरिराभिनाय को व्याख्यित किया गया है। शरिराभिनय के छः प्रकार इस प्रकार बताये गए है– 1.वाक्य, 2.सूचा, 3.अंकुर, 4.शाखा, 5.नाट्चयित, 6.निवृत्यड़्कुर। इनका वर्णन प्रस्तुत करते हुए, वाचिक अभिनयों के 12 प्रकार बताये है। 1.आलाप, 2.विलाप, 3.संललाप, 4.अपलाप, 5.संदेश, 6.अतिदेश, 7.निर्देश, 8.उपदेश, 9.व्यपदेश, 10.उपदेश 11.प्रलाप तथा 12.अनुलाप साथ ही इनका वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है व वाचिक अभिनय के सात विभेद भी कहे गए हैं। प्रत्यक्ष, परोक्ष, भूत, भविष्य, वर्तमान, आत्मत्परस्थ और किसका वर्णन दिया गया हैं। इसके पश्चत् सामन्य अभिनय में प्रयोग होने वाले भावों को व्यक्त किया गया हैं। जिसमें हँसना, बोलना, चलना, आदि का वर्णन किया गया हैं। आभ्यन्तर अभिनय, बाह्य अभिनय, इन्द्रियाभिनय का वर्णन लक्षण के सात वर्णन करते हुये। इनके भेदों को भी वर्णित किया गया हैं व इसके बाद प्रत्येक भाव इष्ट, अनिष्ट, मध्यस्थ आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इसके पश्चात् स्त्री के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। जिसमें देवशीला, असुरशीला, गान्धर्व, राक्षस, नाग, सूकर आदि के लक्षणों को कहा गया है व स्त्री के व्यवहारों का वर्णन किया गया है तथा उनकी विभिन्न चेष्टाओं को भी बताया गया हैं। स्त्री तथा पुरुष के वियोग का अभिनय राजा द्वारा किसी स्त्री से भेंट के छः उद्देश्य बताये गए है व नायिका के आठ भेद बताये है। नायिका का श्रृंगार, व रंगमंच पर न किये जाने वाले निषेध कार्यों का भी वर्णन किया गया हैं। नायिका द्वारा किस प्रकार अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती हैं। बाए व दाए अंग के फडकने पर शुभ व अशुभ के संकेतों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत अभिनय के विषय में विस्तृत चर्चा की गई हैं।

2:4:25 वैषिकोपचार विधान

सार– इस अध्याय मे पुरुष तथा स्त्री के पात्र के अनुसार चरित्र को व्यख्यित किया गया है। जिसमें उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को उनके अनुरूप रूप प्रदान किया गया है। जिसे शोधार्थी अपने शब्दों में अध्ययन के पश्चात् वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत वैशिक–पुरुष अर्थात् जो सभी कला व कार्यों में निपुण हो, उसका वर्णन किया गया है। भरत मुनि द्वारा उसके समस्त गुणों को इस अध्याय के अंतर्गत समझाने का प्रयास किया गया है। समस्त गुणों से युक्त हस्तकौशल तथा शिल्प आदि में पारंगत व स्त्रियों के मन व हृदय में भावों को उत्पन्न कर आकर्षित करने में सक्षम आदि के विषय में चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत तीन प्रकार के भेदों का वर्णन किया गया है, जिसमें शरीर द्वारा, वेशभूषा द्वारा व स्वभाव द्वारा प्रभावित करने की चर्चा की गई हैं। इन गुणों की व्याख्या करते हुए कहा गया हैं, कि एक पुरुष को शास्त्रज्ञाता, कला व शिल्प में निपुण, आकर्षित, बलशाली, धैर्यपूर्ण, चित्त, परिधान का ज्ञाता, निर्भय, उदार, सुभाषी, सौम्य, आत्मसम्मानी आदि को एक वैशिक पुरुष के गुण माना है। इसके पश्चात् स्त्री के विभिन्न पात्रों व कार्यों के विषय में बताया गया है। इसके अंतर्गत दुतीकर्म में चतुर, गुणों से युक्त, सन्यासी या भिक्षुणी, दोस्त, दासी, कपड़े धोने वाली, पड़ोस में रहने वाली, भविष्य की व्याख्या करने वाली आदि अर्थात् वह स्त्री जो नायक व नायिका के बीच मध्यस्त की भूमिका का निर्वाह करने वाली दुती के गुणों की व्याख्या की गई है। साथ ही उसकी अवगुणों को भी व्यखियित किया गया है, जैसी की वह जड बुद्धि व कुंदबुद्धि नहीं होने चाहिए आदि। इस प्रकार के अवगुणों की भी व्याख्या की गई है, इसके बाद दुती के कार्यों को बताया है, जिसमें वह किस प्रकार नायक के सम्वाद को किस प्रकार नायिका तक सम्वाहक के रूप में पहुंचती है।

इसके पश्चात् नारी के प्रकारों को बताया गया था, जिसमें मदनातुरा नारी, अनुरक्ता नारी, विरक्ता नारी, स्त्री के ह्रदय से अपनाने के प्रयासों, विराग के कारण, और स्त्रियों के तीन भेदों का वर्णन किया है, उत्तमा, मध्यमा और अधमा। इसके बाद नारी की चार यौवनवस्थाओं तथा स्त्री के व्यव्हार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, तपश्चात पांच प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया गया है, चतुर, उत्तम, मध्यम, अधम तथा प्रवृद्धक।

इसके बाद भरत मुनि द्वारा यह कहा गया कि स्त्री या नारी को एक अत्यंत रहस्यमय व गूढ़ विषय है, तथा उसको सही ढंग से समझकर ही उसके समीप जाना चाहिए तथा स्त्रियों को अपने योग्य या अनुकूल बनाने हेतु, साम, प्रदान, भेद और भेद का प्रयोग किया जाता है अर्थात् हर प्रकार या किसी भी युक्ति द्वारा उसको अपने अनुकूल बनाना चाहिए व स्त्री के व्यवहार द्वारा उसकी चेष्टाओं को समझाना व उसके नेत्र, भौह व शारीरिक भावों द्वारा उसकी व्यवहार को समझने के विषय की चर्चा प्रस्तुत की गई है। अंत में भरत मुनि द्वारा कहा गया

है कि मैंने अप मुनिजनों को वैशिक व स्त्री के समस्त भाव व गुणों की चर्चा प्रस्तुत की है। इसका उपयोग नाट्य व पात्र की आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार वैशिक–विधान नामक अध्याय समाप्त होता है। इसके पश्चात् चित्राभिनय का विधान कहा जायेगा।

2:4:26 चित्राभिनयाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय में मुद्राओं के मध्यम से अभिनय कर दिन, रात आदि को वर्णित किया गया है। जिसे शोधार्थी ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्याय में अंगों द्वारा होने वाले अभिनय को समझाने का प्रयास किया गया है। दिन, रात, को वर्णित किया गया है, कि किस प्रकार दिन चढ़ता है और कैसे रात्रि का आरंभ होता। इसे अभिनय में मुद्राओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। इसके पश्चात् ऋतुओं का बदलना, मेघों का आना व उससे उत्पन्न होने वाली हृदय में जो सुख होता है या मेघों के जोर से होने वाले भय को भी बतलाया गया है, ग्रह, नक्षत्र, दिशाओं का वर्णन भी अभिनय से वर्णित किया है। भूमि पर पड़े किसी पदार्थों का किस प्रकार बताना है, पवन किस प्रकार चलती है, कभी जोर से या धीरे या से उसका स्पर्श आदि के भावों का वर्णन किया है। रस किस प्रकार भावों पर प्रभाव डालता है, इसका वर्णन किसी मधुर खुशबु को किस प्रकार महसूस किया जाता है, इसका भी वर्णन किया गया है।

शरीर के भावों द्वारा व्यक्त करना, दिखायी देने वाले व सुनाई देने वाली वस्तुओं का वर्णन, विद्युत, तारे, उल्का, आग को दर्शाना भावों द्वारा, सूर्य की स्थिति व दिशा को दर्शाना, हार व माला को हस्त मुद्रा से व्यक्त करना, नकरात्मक भावों को अभिनय द्वारा व्यक्त करना, गर्मी, ताप, वर्षा जैसी प्राकृतिक स्थिति को व्यक्त करना, जंगली जीवों वानर, रीछ, बाघ को हस्त मुद्राओं से व शिर को नीचे झुका कर अभिनय करना, गुणीजनों, गुरुओं, के चरणस्पर्श करना व उनकी वंदना करना, उँगलियों से गिनती व गणना को दर्शाना, छत्र, पताका, के दर्शन अभिनय द्वारा, शरद, हेमंत, शिशिर, बसंत, ग्रीष्म, वर्षा जैसी ऋतुओं का वर्णन करना, भाव, विभाव, अनुभाव, हर्ष में व्यक्ति का व्यवहार, क्रोध में भावों में होने वाले परिवर्तन, दुःख में हृदय से उठने वाली पीड़ा, व भय से हृदय और मस्तिष्क से उठने वाले विचारों का वर्णन किया गया है, मद में किस प्रकार व्यक्ति के भाव परिवर्तित होते है व उसकी चाल में कैसे प्रभाव

पड़ता है, स्त्री का मद में चूर होने व पुरुषों के मद में चूर होने का वर्णन किया गया है, पक्षी–पशु का वर्णन, भूत–पिशाच का भावों द्वारा वर्णन, अभिवादन करना अर्थात् अपने से उच्च किसी भी व्यक्ति व पात्र का अभिवादन करने का वर्णन, पर्वत–वृक्ष को नाट्य में अभिनय द्वारा दर्शाना, समुद्र–जल आदि जल राशियों का अपने रूप को बदलते हुए, चलना आदि को अभिनय द्वारा व्यक्त किया गया है, बिल, गुहा का वर्णन किया गया है, झुले का झूलन उससे उत्पन्न होने वाले भाव आदि को अभिनय के मध्यम से दर्शाना, तथा जो समीप न हो उसे आकाश की संज्ञा दे आकाश भाषित कहा, और मरण के प्रत्येक प्रकार का वर्णन किया गया है, जिसके अंतर्गत किसी भी प्रकार से होने वाली मृत्यु का वर्णन किया गया है, जैसे विष द्वारा, ह्रदयाघात द्वारा, बाघ आदि जंगली जीव द्वारा आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय के अंतर्गत वाणी, शरीर व वेश–भूषा से होने वाले अभिनय को इस अध्याय के अंतर्गत प्रस्तु किया गया है।

2:5:27 नाट्य सिद्धि निरुपण

सार– नाट्य के गुणों को बताया गया है, तथा उसके लक्षणों को बताया गया है, जो कि शोधार्थी द्वारा वर्णित किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में नाट्य गुणों को भलीभांति समझाया गया है व इसके लक्षणों को बतलाया गया है, क्योंकि नाटक की सम्पूर्ण रचना नाट्य को प्रस्तुत करने में प्रयुक्त होने वाले गुणों पर ही निर्भर करती है। यह नाट्य गुण व सिद्धियाँ मन, देह, वाणी द्वारा होने वाले अभिनय और रस भाव के आधार पर दो प्रकार की बतलायी गई है– 1): मानुषी–सिद्धि 2): दैवी–सिद्धि। इसमें मानुषी के दस व दैवी दो अंग बताये है। यह पूर्णतः वाणी, वेश और देह द्वारा अभिव्यक्त होने वाले होते हैं। इसके पश्चात् वन्द्मायी सिद्धि, शारीर सिद्धि, दैवी सिद्धि का वर्णन किया गया है। जिसमें दर्शकों का हँसना या जोर से हँसना आश्चर्यचकित होना या चिल्लाना आदि दर्शकों का अपने स्थान पर उछलना या कोई भी उत्सुकतावश कार्य करना, शरीर सिद्धि व सात्विक रूप में भाव को प्रकट करने को दैवी सिद्धि कहा गया है।

इसके पश्चात् घातों का वर्णन किया गया है। त्रिविध घात ''त्रि'' का अर्थ तीन माना जाता है। यहाँ पर तीन प्रकार से होने वाली दुर्घटना या घातों का वर्णन किया गया है। जिसमें पहली देव या भाग्य द्वारा उत्पन्न होने वाली दुर्घटना, दूसरा स्वयं अभिनेता द्वारा होने वाली

और तीसरा शत्रु द्वारा किये जाने वाले घात और अंत में कदाचित उत्पात द्वारा घटित होने वाले घातों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् दैवकृत घात का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें प्राकृतिक व अप्राकृतिक दुर्घटनाओं को रखा जा सकता है, जैसे आग, तूफान, किसी जीव–जन्तु का आक्षेप आदि और शत्रुकृत घात के अंतर्गत शत्रु द्वारा किये जाने वाला कोई कृत, जिसमें कोई भी घटना जैसे विस्फोट, गाली आदि द्वारा होने वाला घात। इसी क्रम में आत्मसमुत्थ घात के विषय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है, कि जिसमें अभिनेता द्वारा स्वयं ही नाट्य के दौरान होने वाले नकरात्म कार्यो को वर्णित किया गया है, जैसे अस्वभाविक रूप में हाथ–पैरों का संचालन, अपनी भूमिका का सही निर्वाह न करना, अपने सम्वाद को भूलना, अकारण शोर करना या आभूषण व शस्त्रों में होने वाले अव्यवस्था का होना।

इसके पश्चात् उत्पातजन्य घात का वर्णन किया गया है, कि इसमें उल्कापात, भूकंप आदि का वर्णन किया गया हैं। अप्रतिकार्यघात अर्थात् नाट्य के अंतर्गत होने वाले घात दो आधार पर होते है, एक तो अस्वभाविक अभिनय और दूसरा काल या समय जिस नाट्य में नाडिका कहा गया है। नाडिका अर्थात् 24 मिनिट यह एक प्रकार का जल से भरा घट होता है, जिसमें सुराख किया गया होता है और जिससे बूंद–बूंद करके जल गिरता है, जिससे समय या काल को निर्धारित किया जाता है। इसकी अव्यवस्था होने पर नाट्य भी अव्यवस्थित हो जाता है। मुख्य या मोटे तौर पर होने वाली दुर्घटनाओं में सम्वाद में त्रुटियाँ, या भूल जाना, तर्क हीन वाक्यों का प्रयोग, व्याकरण या छन्द में त्रुटियाँ करना, ताल से अलग होना, स्वर में त्रुटी, सम को न समझना या अधिक जोर से वादन करना, या कभी रिक्त छोड़ देना व अवनद्ध वाद्य आदि का उचित प्रयोग करने में अक्षम आदि, पद, वाक्य, सम्वाद, स्वर, परिधान में त्रुटी आदि को स्थूल घात में माना जाता है। इसका पूर्ण विवरण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

इसी प्रकार त्रिविध घात विभाग का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है, इसके बाद अशुद्धनान्दी पाठ अर्थात् किसी पात्र द्वारा अज्ञानता वश नाट्य प्रयोग में होने वाले देवता के स्थान पर किसी अन्य देवता की स्तुति का पाठ कर देना, जिसे एक गंभीर घात के रूप में स्वीकार जाता है। इसके पश्चात् प्रक्षिप्तिकरण से होने वाला घात किसी अन्य की रचना को दूसरे रचनाकार की रचना के साथ संयुक्त कर देना। इस प्रकार नाट्य को पूर्ण रूप से दोष रहित या सर्व गुणों से सम्पन्न तो नहीं बनाया जा सकता, परन्तु त्रुटियाँ कम से कम हो इस बात

को ध्यान में रखकर नाट्य का संचालन करना चाहिए और सभी पात्रों को अपने पात्र व उससे सम्बन्धित कार्यो से लगाव होना आवश्यक है। इस अध्याय में दर्शकों के भी कार्यों और गुणों का भी वर्णन किया गया है। नाट्य का आकंलन, उसमे रस के समावेश का समय, उसकी ताल व पात्रों को इतना सक्षम होने के गुणों का वर्णन किया गया हैं, जो कि समाज में अपना एक आदर्श स्थापित कर सके इस प्रकार यह अध्याय नाट्य सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की त्रुटियों, घातों आदि को वर्णित करता है व नाट्य सिद्धि के निरूपण का अध्याय समाप्त होता है।

2:4:28 आतोद्यविधान

सार– प्रस्तुत अध्याय में त्, अवनद्ध ,घन तथा सुषिर वाद्यों को आतोद्य कहा गया हैं। जिसके नाट्य प्रयोग की विधि तथा लक्षणों को भरत के द्वारा इस अध्याय में बताया गया हैं, जिसे अध्ययन के पश्चात् शोधार्थी ने इस अध्याय में बताने का प्रयास किया है।

भरत द्वारा प्रस्तुत अध्याय में आतोद्य विधि के विषय में बताया गया हैं। आतोद्य के चार भेंद भी बताए हैं– तत्, अवनद्ध, सुषिर तथा घन। इस अध्याय में आतोद्य वाद्यों के स्वरूप को भी वर्णित किया हैं, जिसके अंर्तगत वाद्यों को उनकें श्रेणी के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। जिसमें तन्त्रि वाले वाद्यों जैसे वीणा आदि को तत् वाद्यों, खाल से मढ़ें और अघात या पीटकर बजाए जाने वाले पुष्कर आदि अवनद्ध वाद्य कहे गए व किसी धातु जैसे कांसा, पीतल आदि द्वारा निर्मित वाद्य कांसी आदि को घन वाद्य की श्रेणी में रखा गया तथा वायु वेग से अर्थात् फूंककर ध्वनि को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को सुषिर वाद्यों की श्रेणी में स्थान दिया गया, जिसमें बांसुरी, वंशी आदि वाद्यों को वर्णित किया गया हैं। इसके पश्चात् आतोद्य वाद्यों का ही नाट्य प्रयोग का विधान भरत मुनि द्वारा कहा गया हैं। साथ ही इनके गायन विधा के साथ प्रयोग का भी वर्णन किया गया हैं, कि गायकों के साथ वीणा और वंशी वादकों का बैठना, और अवनद्ध वादकों की बैठक आदि। इस प्रकार नाट्य के अंर्तगत इन वाद्यों को कुतुप वाद्यों की संज्ञा प्रदान की है तथा उत्तम, मध्यम और अधम के रूप में पात्रों के संगीत का भी वर्णन किया गया हैं। इस अध्याय में स्वर, ताल और पदों पर आधारित संगीत 'गान्धर्व' कहलाता हैं इसका भी पूर्ण वर्णन विधान सहित प्रस्तुत किया गया हैं। जिसमें 'गान्धर्व' संगीत की उत्पत्ति की भी चर्चा की गई हैं।

स्वरों की उत्पत्ति का आधार शरीर एंवम् वीणा को माना है। इसके बाद शरीर अर्थात् शरीर को गात्र वीणा कहकर संबोधित किया तथा वीणा द्वारा उत्पन्न हाने वाले स्वरों के विधान की विस्तृत चर्चा की गई हैं। स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार, धातु, श्रुति आदि के समूह को दारवी वीणा में बताया है। स्वरों की पद्गत विधि, तालविधान के त्तव जिसमें निबद्ध तथा अनिबद्ध अवाप, प्रवेशक, निष्क्राम, शम्या आदि के विधान का वर्णन किया है। सात स्वरों का नामों सहित व्याख्या तथा उनकें श्रुति भेंद वादी, संवादी, विवीद आदि की व्याख्या मधयम ग्राम तथा षड़ज ग्राम के संवादों का वर्णन किया गया है, तथा षड़ज और मध्यम ग्राम की क्रमशः सात–सात मूर्च्छनाओं का वर्णन किया गया है। मध्यम ग्राम का प्रारम्भिक स्वर मध्यम बताया है। शुद्ध, विकृत एवं साधारण स्वरों का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं। आतोद्य विधान के अंर्तगत स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि की सम्पूर्ण जानकारी दी गई है। साथ ही इस अध्याय में जातियों के विषय में भी चर्चा की गई है। जिसमें षड़ज ग्राम में सात तथा मध्यम ग्राम में ग्याराह अर्थात् कुल 18 जातियों का उल्लेख मिलता है, तथा ग्राम के आधार पर श्रुति विभाजन का भी वर्णन किया गया है। जाति लक्षण जो कि दस बताये गये है, इनका भी वर्णन मिलता है। दस लक्षण इस प्रकार है– 1.ग्रह 2.तार 3.अंश 4.न्यास 5.मन्द्र 6.षाड़व 7.औड़व 8.अपन्यास 9. अल्पत्व 10. बहुत्व, तथा इन सभी के विस्तारपूर्वक लक्षणों को कहा गया है। इस प्रकार सभी स्वर, ग्राम, जाति आदि के लक्षणों को भरत मुनि द्वारा बताया गया है। जिसके माध्यम से अभिनय के विभिन्न चरणों को पूर्ण किया जाना सम्भव हो सके। इस प्रकार यह अध्याय समाप्त होता है।

2:4:29 ततातोद्यविधान

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि के द्वारा रस के आधार पर षडज ग्राम की जातियों का वर्णन किया गया है। साथ ही इस अध्याय के अंतर्गत तत् वाद्यों के स्वरूप, वादन शैली, तथा प्रकारों की चर्चा की गई है, जिसे अध्ययन के पश्चात शोधार्थी द्वारा प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में भरत मुनि द्वारा षडज ग्राम आधारित अध्याय के अंतर्गत ग्राम के आधार पर रस की व्याख्या की गई है। जिसमें षडज और मध्यम ग्राम की जातियों सहित रसों की व्याख्या की गई है। षडज–मध्यमा जाति में श्रृंगार और हास्य रस के अंतर्गत मध्यम और

पंचम की अधिकता रहती है और आर्षभी जाति में वीर, अद्भुत तथा रौद्र रस मे षड़ज तथा ऋषभ स्वरों का देखा जाता है।

इस प्रकार भरत के द्वारा सभी आठों रसों के साथ सभी स्वरों के विधान की व्यखाया जाति सहित प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार षड़ज ग्राम के पश्चात मध्यम ग्राम की सभी जाति के साथ रसों की व्याख्या स्वरों के अनुसार प्रस्तुत की गई है। साथ ही इस अध्याय में रस के आधार पर भी स्वर के विधान को वर्णित कियाा गया है। वर्ण तथा अलंकारों का स्वरूप तथा उनका विधान बताया है। वर्णों की व्याख्या करते हुए, शरीर के तीन स्थानों से उत्पन्न होने स्वरों के स्थानों हृदय, कंठ तथा मस्तक को वर्णित किया है।

इसके पश्चात् वर्णों के आश्रय से उत्पन्न होने वाले अलंकारों को बताया है। प्रसन्नादी, प्रसन्नान्त, प्रसन्नाद्यन्त, प्रसन्नमध्यसम, बिन्दु, वेणु, सन्निवृत्ति, प्रवृत्त, कंपित, कुहर, रेचित, मंद–तार–प्रसन्न, प्रसवार, प्रसाद, प्रेखोलित, उद्वाहित, रंजित, हुंकार, अवलोकित, निष्कूजितक, उदगीत, ह्वादमान, आवर्तक, परिवर्तक, उदघट्टितक, संप्रदान, हसित, आरक्षित, विधुन, गात्रवर्ण, संधि–प्रच्छदन प्रस्तार। इसके पश्चात इन सभी को स्थायी अंतरा संचारी आरोही और अवरोही के रूप में भेदों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार तैंतीस अलंकारों का वर्णन भरत के द्वारा बताया गया है। इसके पश्चात् गतिनुसार उनके भेदों का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में धातु का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। धातु के चार भेंद है विस्तार, करण, आविद्ध तथा व्यंजन इसके बाद चारों भेदों के लक्षणों को बताया है। जिसमें विस्तार के चार, करण के पांच, आविद्ध के भी पांच तथा वीणा के आधार पर व्यंजन के दस धातु प्रकार बताए गए है। आघात के प्रकार, वीणा के प्रकार, उनका स्वरूप, वादन शैली जिसमें विपंची को नौं तारों तथा चित्रा के सात तारों का वर्णन आदि को बताया गया है, और इसके तालविधान को भी कहा है। इस प्रकार इस अध्याय में स्वरों द्वारा हाने वाले विधान को कहा है।

2:4:30 सुषिर–आतोद्य विधानाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय मे सुषिर वाद्य के विधान को कहा गया है। जिसमें उसके स्वरों आदि को वर्णित किया गया है। जिसे आध्यान के पश्चात शोधार्थी द्वारा इस अध्याय में रखा गया है।

प्रस्तुत अध्याय मे सुषिर वाद्य के लक्षणों को बताया गया है। जिसमें वीणा के समान ही स्वर, ग्राम आदि को वर्णित किया गया है। बांसुरी के स्वरों को बताते द्विक, त्रिक, चतुष्क, कंपित,

व्यक्त मुक्त बताए है। इन्हें श्रुतियों की संख्या के अनुसार ही परिवर्तित किया जाता है, तथा इसे काकली तथा साधारण स्वरों को भी व्यख्यित किया गया है।

इन्हीं स्वर तथा श्रुति परिवर्तन के अनुसार अंगुलियों का संचालन निर्धारित होता है, जो भी स्वर वीणा या कंठ में प्रविष्ट होते है, वह सभी वंशी पर बज सकते है। कंठ द्वारा उत्पन्न होने वाले स्वरों को सर्वाधिक उत्तम प्रकार से वंशी द्वारा उत्पन्न किया जा सकता हैं। इस प्रकार वंशी के द्वारा बिना बीच में टूटे स्वरों को अलंकार तथा वर्णों की सहायता से बजाया जा सकता है। इस प्रकार वेणु वाद्य के लक्षण इस अध्याय मे पूर्ण होते है, तथा यह अध्याय समाप्त होता है।

2:4:31 तालविधानाध्याय

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत ताल विधान के सभी नियमों तथा लक्षणों को को समाहित किया गया है। जिसका पूर्ण विवरण इस शोध प्रबंध के तीसरे अध्याय के अंतर्गत श्लोकों तथा उनके अनुवाद सहित शोधार्थी द्वारा प्रतिवेदन स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

2:4:32 ध्रुवाविधान

सार– प्रस्तुत अध्याय मे भरत द्वारा ध्रुवा के विधान को कहा है, जिसे वह सभी मुनियों से सुन्ने के लिए कहते है। जिसे शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्याय मे रखने का विनम्र प्रयास किया गया है।

भरत मुनि कहते है कि नारद जी द्वारा जिन्हें ध्रुवा कहा गया है, उसके विधान को इस अध्याय मे कहूँगा। यह कहते हुए भरत मुनि द्वारा ध्रुवा के स्वरूप को कहा गया। ऋक, पाणिका, गाथा तथा सप्तगीत आदि को ध्रुवा गीत बताया गया है। इसके पश्चात छन्द द्वारा निर्मित होने वाले ध्रुवाओं का वर्णन किया है। ध्रुवा के अंगों का वर्णन करते हुए मुख, प्रतिमुख, स्थिक, संधि वैहायसक प्रवृत्त प्रस्तार वज्र, चतुस्त्र उपपात संहरण उपवर्त प्रवेणी आदि को वर्णित किया गया है। एक वस्तु मे निर्मित गीत ध्रुवा दो मे परिगीतिका तीन के अंतर्गत मदक और चार के अंतर्गत निर्मित गीत चतुष्पदा कहा हैं। जब अलंकार, लय, वर्ण यति पाणी संयुक्त रूप, जो एक दूसरे से परस्पर संबद्ध हो उसे ध्रुवा कहा गया है। चतुरस्त्र ताल प्रयोग की जाती है, जिसे छः या आठ कला मे रखा जाता है। इसके पश्चात नाट्य मे प्रयोग होने वाले विधानों को बताया गया है और उसी के अनुसार ध्रुवा के अंतर्गत ताल विधान का वर्णन प्राप्त

होता है। तथा प्रत्येक छन्द आधारित ध्रुवा का भी वर्णन किया गया है, जिसमें गायत्री तथा अतिशक्करी के मध्य का पाद अवसानीकी कहा गया है। कनिष्ठिका ग्रहा, सन्निपात ग्रहा तथा चापग्रहा यह तीन ध्रुवा प्रकार बताए है और प्रवेशिकी, आक्षेपिकी, प्रसादिकी, अंतरा और निष्कमिकी यह पाँच प्रकार बताया है, जिसमें छन्दों का वर्णन भरत मुनि द्वारा बताया गया है। पद उसे कहा है, जो अक्षरों से बनता है, जो दो प्रकार के होते है– निबद्ध तथा अनिबद्ध और इसके अताल और सताल दो प्रकार होते है। ताल युक्त सताल व निबद्ध तथा ताल रहित अताल या अनिबद्ध के अंतर्गत आता है। इसके पश्चात छन्दों का वर्णन करते हुए छन्द की जतियों का वर्णन किया गया है, और उसमें प्रयुक्त होने वाले लघु गुरु के वर्णों का विधान कहा गया है, जिसे उदाहरण सहित वर्णित किया गया है। जाति, नाम, प्रकार, स्थान तथा प्रमाण नामक ध्रुवाओं की पाँच भिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है और ध्रुवाओं के प्रकारों मे शीर्षका, उद्धता, विलम्बिता अपकृष्टा आड्डिता अनुबंधा का भी वर्णन विस्तार से मिलता है। तीन वय बताए है– शैशव, यौवन तथा वार्धक्य तथा काल का वर्णन किया गया है। काल का अर्थ, यहाँ समय से लिया गया है। दिन रात दिवस मास वर्ष आदि ध्रुवाओं के विषय, ध्रुवा के छन्द, ध्रुवा की भाषा तथा ध्रुवा के अवसरों का वर्णन किया है। गायक, गायिका, वीणा वादक, वंशीवादक सभी के गुणदोषों का वर्णन किया गया है। साथ ही आचार्य के छः गुण बताए है स्मृति, मति, मेधा, शास्त्र, शिक्षण क्षमता तथा इसी प्रकार शिष्य के भी गुणों का वर्णन किया गया है। कंठ, के गुण कहे है।इस प्रकार ध्रुवा विधान का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत अध्याय मे दिया गया है।

2:4:33 अवनद्धा तोद्यविधानाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय में अवनद्ध वाद्यों के विधान को कहा है। इसके समस्त लक्षणो को वर्णित किया गया है।

इससे पूर्व भरत मुनि द्वारा त्त वाद्यों के विषय मे बताया है। प्रस्तुत अध्याय मे अवनद्ध वादी के विषय मे बताते हुए, स्वाति मुनि द्वारा अवनद्ध वादी की उत्पत्ति की बात को कहा है। जिसमें स्वाति मुनि के द्वारा वाद्य उत्पत्ति के विषय मे संक्षेप से बताते हुए, कहा है कि भारी मेघ वर्षा के बीच जब आसमान बादलों से घिरा था, तब स्वाति मुनि एक जलाशय से जल लेने गए, उस समय भगवान इन्द्र द्वारा पृथ्वी को एक जलाशय के रूप मे बदलने के उद्देश्य से भारी वर्षा कि जा रही थी, तब उस जलाशय मे निकट हवा के वेग से एक कमल के पत्ते

पर जलधारा की मधुर ध्वनि का सृजन हो रहा था। जिसे स्वाति मुनि द्वारा सुना गया और उससे ही विचार और मन्न करते हुए, स्वाति मुनि अपने आश्रम मे वापस लौट गए तथा तब भगवान विश्वकर्मा की मदद से स्वाति मुनि द्वारा अवनद्ध वाद्यों की रचना की गई। देवों की दुंदुभि आदि वाद्य से मुरज, आलिंगक ऊर्ध्वक जैसे कई अवनद्ध वाद्यों का निर्माण किया गया। इस प्रकार स्वाति मुनि ने सभी तरह के परीक्षण में दक्ष थे, तो उन्होने अपने परीक्षणों से मृदंग आदि को चमड़े से मढ़कर उसका निर्माण किया। इसके बाद झल्लरी, पटह आदि को भी चमड़े से मढ़ दिया गया तथा वीणा तथा अन्य तन्तु वाद्यों और सुषिर वाद्यों के विधान को लक्षणो सहित व्यख्यित किया गया है। इसके पश्चात अनवद्ध वाद्यों की उपयोगिता को बताया है। सभी अवनद्ध वाद्यों का वर्णन दशरूपकों मे होता है तथा रस, भाव को भी व्यख्यित किया गया है। इसके साथ ही अवनद्ध वाद्यों का सामान्य वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है और चमड़े से मढ़े हुए त्रिपुष्कर वाद्यों का वर्णन किया गया है। भरत मुनि के अनुसार इसके सैकड़ों प्रकार हो सकते है, परंतु यह मात्र त्रिपुष्कर वाद्यों का ही वर्णन तथा लक्षणों को कहा है। यह भी बताया है, कि वाद्यों मे उन्हीं सात स्वरों को उत्पन्न किया जाता है, जो वीणा तथा मानव शरीर मे मौजूद हैं।

पुष्कर वाद्यों के लक्षणों तथा स्वरूप को भी वर्णित किया गया है। पुष्कर वाद्य के सोहल अक्षरों को बताया है– जैसे क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, म, र, ल, ह। पुष्कर वाद्य के चार मार्ग– अलिप्त, अड्डित, गोमुख तथा वितस्तता। वाद्य पर विलेपन की विधि आदि सभी विधान प्रस्तुत किए गया है। अनवद्ध वाद्य मे स्वर तथा व्यंजन को वर्णित किया गया है। वाद्यों के आठ साम्य बताए है, जो कि अक्षरसम, अंगसम, तालसम, लयसम, यतिसम, ग्रहसम, न्यासोपन्यास सम और पाणिसम। इसके बाद 18 जातियाँ बताई है। गतिप्रचार के आधार पर गतियों का भी वर्णन किया गया है। ध्रुवाओं में वाद्यवादन बताए है, और वाद्यों को वादन करने तथा उनके आरंभ करने कि विधि का वर्णन किया है और वाद्यो के वादन कि बीस प्रकार की योजना का वर्णन किया गया है। एक वादक के गुण दोष तथा अवनद्ध वाद्यों का स्वरूप वर्णित किया है। भरत मुनि द्वारा सभी वाद्यों के अधिदेवता भ बताए गए है। वादन के सामान्य विधान भी वर्णित किए गए है और नाट्य मे प्रयोग होने वाले वाद्य–वादन का वर्णन किया गया है। इस प्रकार अवनद्ध विधान संबन्धित अध्याय समाप्त होता है। जिसका पूर्ण वर्णन इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

2:4:34 प्रकृतिविचाराध्याय

सार– पात्रों की प्राकृति का वर्णन प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत किया गया है। जिसमें पात्रों के प्रकार उनके विचार आदि का वर्णन किया गया है। जिसे प्रस्तुत अध्याय मे शोधार्थी द्वारा वर्णित किया गया।

भरत के द्वारा स्वरूप का वर्णन किया गया है, नायक के चार भेद कहते हुए पुरुष और स्त्री पात्रों के तीन भेद बताए गए है, जिसमे उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों का वर्णन किया गया है। उत्तम के लक्षणों का वर्णन करते हुए, उसे चतुर, कला निपूर्ण, दीनों का सहयोगी, धैर्यपूर्ण तथा त्याग जैसे गुणो से पूर्ण हो मध्यम पात्र के लक्षण को बताते हुए कहा है कि जन समाज मे व्यवहारशील, शास्त्र आदि मे निपूर्ण आदि कहा है तथा अधम कि व्याख्या करते हुए उसे नीच, कठोर, क्रोधी, धोखा देने वाला आदि कहा है। इसी प्रकर उत्तम, मध्यम, तथा अधम स्त्री का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् संर्किण के स्वभाव तथा प्रकृति का वर्णन किया है।

2:4:35 भूमिका विकल्पाध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत नाट्य के अनुसार भूमिका के विभाजन का वर्णन किया गया है। जिसे शोधार्थी द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है।

पुराणों मे जिन भूमिकाओं का वर्णन किया गया है, उसे ही भरत मुनि द्वारा इस अध्याय मे वर्णित किया गया है। जिसमें सभी पात्रों की भूमिका उनके अभिनय, रूप, व्यवहार आदि के अनुसार निर्धारित किए जाते है। जैसे देवता के पात्र का निर्धारण मे व्यक्तित्व का आकर्षित होना, रूपवान वाणी की मधुरता, शारीरिक सुडौलता आदि को ध्यान में रखा जाता है। राक्षस या दैत्य के लिए भ यानक दिखने वाला तथा समान्य दृष्टि से भी भय का अभान होना आदि बातों का ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार पात्रों के गुणों के चुनाव के आधार पर भूमिका का निर्धारण किया जाता है। इस प्रकर राजा, राज कुमार, सेनापति, अमात्य, दास आदि सभी पात्रों के चयन के निश्चित नियमों का वर्णन किया गया है। साथ ही अन्य पात्रों की भूमिका जिनमें किसी पशु आदि का वर्णन हो उस पात्र की भूमिका के लिए निर्देशक के द्वारा मुखौटे आदि का प्रयोग किया जाता है।

इसके पश्चात मंच पर प्रवेश के नियम बताए है, जैसे कि कोई भी पात्र अपने बिना किसी साज–सज्जा के मंच पर प्रवेश नहीं करेगा और अपने पूर्ण रंग भूषण के साथ ही अपनी भूमिका के निर्वाह के लिए मंच पर प्रवेश लेगा। नाट्य कि तीन प्रकृति का वर्णन किया गया है– जिसमें अनुरूपा, विरुपा और रूपानुसारिणी। जिसमें पात्र के स्त्री पात्र के पुरुष पात्र के अवस्था का वर्णन अनुरूपा के अंतर्गत, बालक या बृद्ध के रूप मे विरुपा का वर्णन और पुरुष पात्र के स्त्री पात्र के रूप मे भूमिका निभाना रूपानुसारिणी कहा है। स्त्री पात्र कि भूमिका पुरुष पात्र और पुरुष पात्र कि भूमिका स्त्री पात्र अपनी स्वेच्छा से निभा सकते है, परंतु बालक और बृद्ध परस्पर एक दूसरे कि भूमिका नहीं निभानी चाहिए तथा स्त्री और पुरुष पात्रों की विशेषता को बताया है, कि स्त्री एक पुरुष पात्रों को सहजता से निभा सकती है। नाट्य प्रयोग के विभेद दो बताए है– सुकुमार और आविद्ध।

नाट्य रूपकों को सुकुमार कहा हैं, जिसका पूर्ण विधान कहा गया है। छेदन, भेदन, मायाजाल आदि से रूपकों से युक्त नाट्य प्रयोग को आविद्ध कहा गया है। नाट्य के अंतर्गत पात्र के व्यक्तित्व पर पूरा ध्यान दिया जाता है। पात्र की वेषभूषा, आभूषण, वस्त्र तथा हाव–भाव को भी पूर्ण रूप से ध्यान मे रख कर पात्र को निर्धारित किया जाता है। जिसमे राजा, विट, विदूषक, गणिका नायिका आदि को उसके प्रकृति के अनुसार भूमिका प्रदान की जाती है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत नाट्य निर्देशक के भी लक्षण तथा गुणों को बताया गया है, व नट शब्द के अर्थ को बताया गया है, नाट का अर्थ है किसी कार्य को करना या अभिनय करने वाला और जब किसी के द्वारा मंच पर पूर्ण रस, भाव के साथ नाट्यकथा को प्रस्तुत किया जाता है, तो वह अभिनेता कहा जाता है, आदि नाट्य भूमिका, रचना तथा नाट्य प्रयोग संबन्धित विधानों का प्रस्तुत अध्याय मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

2:4:36 नाट्यावताराध्याय

सार– प्रस्तुत अध्याय मे नाट्यशास्त्र के समस्त अध्यायों संबंधी प्रश्न ऋषिगणों द्वारा पूछे गए, प्रश्नो का भरत मुनि द्वारा उत्तर उनके समाधान सहित प्रस्तुत किया गया है। जिसे शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्याय मे वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

इस अध्याय के आरंभ में समस्त ऋषियों द्वारा भरत मुनि से नाट्यवेद के संबंध में प्रश्न पूछे गए और यह पूछा गया कि इस नाट्यवेद को आपके अलावा और कौन व्याख्यित कर सकता

है। इसके साथ ही कई अन्य प्रश्न प्रस्तुत अध्याय में ऋषियों द्वारा भरत मुनि से पूछे गए। भरत मुनि जी ने फिर कहा कि मैंने अप सभी से प्रश्नो को ध्यान में रखते हुए, अध्यायों में उसके निवारण को भी कहा है– जैसे शस्त्र संरक्षण तथा अन्य विघ्नों संबंधी निवारण यज्ञ, होम का वर्णन प्रस्तुत किया है। ताकि समस्त नकारात्मक ऊर्जा व पापों को दूर किया जा सके। नंदी शब्द के पाठ करने गीत गाने या उसका उच्चारण करने से समस्त कल्याणकरी चीजों के के विघ्नों का नाश हो जाता है और यह भी बताया कि भरत मुनि द्वारा शंकर आदि देवताओं से यह सुना है, कि गायन तथा वादन करने से पवित्र नदी मे स्नान करने से कई गुना अधिक शुभफल प्राप्त होता है। पात्र के रंगमंच पर पवित्र हो कर आने के विधान को कहा है। भरतमुनि के पुत्रों द्वारा ऋषिगण को अप्रसन्न हो गए, क्योंकि नाट्यवेद के ज्ञान के मद मे सभी भरत पुत्र चूर हो गए और नाट्यशास्त्र को हास्य रस मे कहा, जिस कारण उन्होनें भरत के पुत्रों का शाप दिया और कहा ऋषियों द्वारा कहा गया कि आप हमें अपने मद में इस प्रकार अपमानित नहीं कर सकते हैं और शाप दिया गया कि जब आप किसी सभा मे जाएगें तो आप वेद ज्ञान से हीन ही दिखाई देगे और शूद्र आचरण को ग्रहण कर समाज मे अपवित्र दिखेगे।

इसके पश्चात देवों द्वारा ऋषियों से भरत के पुत्रों के लिए प्रार्थना की गई कि इससे नाट्यवेद का नाश होगा व अंत होगा तो ऋषियों द्वारा कहा गया कि नाट्य का नाश नहीं होगा, किन्तु इस शाप का नाट्य पर प्रभाव अवश्य होगा। इसे सुनकर भरत के पुत्र भरत मुनि के पास पहुंचे और भरत मुनि से कहा कि अपने हमारा सब कुछ नष्ट किया है, जिस कारण हमें सब समाज में शूद्र आचरण को अपनाएगें। इसे सुनकर भरत मुनि ने उन्हें कहा और सांत्वना दी कि इसमें किसी की कोई गलती नहीं है, यह मात्र भाग्य और समय के काल चक्र के कारण हुआ है और कहा यह नाट्य वेद ब्रह्मा द्वारा बनाया गया है और तुम लोग इसकी प्रयोगो के साथ अपने और शिष्यों को इसकी शिक्षा प्रदान करो। कहा कि जब अप्सराओं को इसका ज्ञान दोगे तो शाप का प्रश्च्यित होगा। इसके पश्चात नहुष ने नाट्य के उत्वेत्ताओ को पृथ्वी पर आमंत्रित किया तथा इस अध्याय मे नहुष नामक राजा की कहानी को भी समाहित किया गया है और भरत के पुत्रों के द्वारा पृथ्वी पर नाट्य को प्रस्तुत किया गया। अध्याय के अंत मे कोहल का वर्णन प्राप्त होता तथा नाट्यशस्त्र की महिमा, नाट्यशास्त्र का फल आदि को

प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र के छतीस अध्यायों को संक्षेप मे प्रस्तुत करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

निष्कर्ष– शोधार्थी के द्वारा इस शोध प्रबंध के द्वितीय अध्याय के अंतर्गत नाट्यशास्त्र के सम्पूर्ण परिचय, उसके रचना काल से जुड़े मत–मतांतर, नाट्यशास्त्र के रचयिता व उसके स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही नाट्यशास्त्र के समस्त अध्यायों को आध्यान के पश्चात इस अध्याय के अंतर्गत लघु रूप मे प्रस्तुत किया है। नाट्यशास्त्र एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जिसका महत्व न सिर्फ नाट्य की दृष्टि से है, अपितु संगीत की दृष्टि से भी सर्वाधिक है। एक अज्ञात अतीत मे भरत मुनि के द्वारा इस महान ग्रंथ की रचना हुई, जिसे नाट्यशास्त्र के रूप मे जाना गया। इस ग्रंथ मे नाट्य के समस्त लक्षणों को समन्वित किया गया है, जिसमें साज–सज्जा, पात्रों की वेश–भूषा, उनके संवाद, कथावस्तु की रचना, नेपथ्य गृह की स्थापना, रस–भाव आदि सभी को समन्वित करते हुए, इस ग्रंथ की रचना सभी को ध्यान मे रखते हुए की गई। इस कारण इस नाट्यशास्त्र का महत्व सर्वाधिक है, जिसमें सभी कलाओं का सार निहित है। इस ग्रंथ के काल निर्धारण के संबंध मे समय–समय पर कई विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किए व इसे ई० सा० पूर्व से लेकर चौथी शताब्दी के मध्य का समय इसके लिए निर्धारित किया, क्योंकि प्रत्येक साक्ष्य दूसरे साक्ष्य को निरर्थक सिद्ध कर देता है इस कारण कोई भी मत पूर्ण रूप से निश्चित को प्राप्त नहीं कर सका, फिर भी विद्वानों द्वारा चौथी से पहली शताब्दी तक का काल इसके लिए निर्धारित किया हैं।

अभिनव, धानिका, शारदातनय आदि द्वारा भरत मुनि को 'सतसहश्रीकारा' कहकर संबोधित करते है। कुछ विद्वानों द्वारा इसे पद्य और गद्य रूप मे मानते है तथा कुछ इस छन्द बद्ध मानते है, सुशील कुमार डे ने इसे 'सूत्रभाष्य' के रूप मे स्वीकार किया है। नाट्यशास्त्र पर कई टीकाओं को लिखा गया, परंतु अभिनवगुप्त की अभिनव भारती के अलावा कोई अन्य टीका प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार नाट्यशास्त्र का महत्वता व इसकी उपयोगिता का पता चलता है। नाट्यशास्त्र मे छत्तीस तथा कुछ संस्करणों मे सैंतीस अध्याय प्राप्त होते है। गायकवाड़ ओरियंटेल सीरीज नं० 145 भरत कृत नाट्यशास्त्रम् टीका अभिनव भारती जो अभिनव गुप्त रचित है, में 37 अध्याय बताए गए है। तथा जिन संस्कारणों में नाट्यशास्त्र के 37 अध्याय देखने को मिलते है, उसमें सैतींसवें अध्याय के अंतर्गत राजा नहुष के विषय में

कथा प्राप्त होती है व नाट्यशास्त्र के मूल पाठ्य के अंतर्गत 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34 तक के अध्यायों मे संगीत के सभी लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही 4, 6, 7, 9, 10, 36 मे भी कुछ भागों मे सांगीतिक त्तवों का वर्णन प्राप्त होता है।

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के अंतर्गत नाट्यशास्त्र उद्भव के विषय मे बताते हुए, ईश्वर के आशीष द्वारा प्राप्त नाट्यशास्त्र संबन्धित प्रार्थना, वृतियों, जजर्र आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय मे मंगलाचरण मे ब्रह्मा तथा महादेव को बारंबार प्रमाण कर उनसे नाट्य विद्या के लिए प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार द्वितीय अध्याय मे प्रेक्षागृह के निर्माण, मंडप निर्माण, नाट्य संबंधी रंगगृह का निर्माण, स्तंभो की स्थापना आदि को वर्णित किया गया है। तृतीय अध्याय के अंतर्गत रंग देवताओं की पुजा, देवों की स्थापना उनका भोग–मिष्ठान, हवन आदि का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय अमृतमंथन का वर्णन किया गया है, देव आदि का प्रिय अध्याय माना जाता हैं इस अध्याय के अंतर्गत भरत मुनि द्वारा अमृतमंथन नाट्य को रूप किया गया जिस इस अध्याय के अंतर्गत स्थान दिया गया है। पूर्वरंग विधान नाट्य आरंभ होने से पूर्व के विधानों वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रसशास्त्र भरत मुनि द्वारा रस के पूर्ण विवरण को इस अध्याय मे बताया गया है। इसमे रस भाव के साथ साथ संबंधित देव तथा रंगों का भी भावों और स्थायी भावों सहित व्याख्या प्रस्तुत की गई है। भावाध्याय रस के पश्चात भरत मुनि द्वारा भावों को व्यक्त किया गया है। उपांगाभिनय उपांगो के अभिनय के विषय मे चर्चा प्रस्तुत की गई है जिसमे मुख, शरीर अंगों व भावों द्वारा होने वाले अभिनय के विधान का वर्णन किया गया है। आंगिक अभिनय अंगो के द्वारा होने वाले अभिनय की चर्चा की गई है जिसमें हस्त तथा पाद क्रिया द्वारा होने वाले अभिनय का वर्णन सूचित तथा सचित्र प्रस्तुत किया गया है।

शरीराभिनय शरीर के माध्यम से होने वाले अभिनय का वर्णन किया गया है। जिसके अंर्तगत आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित कोख उदर उरु आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं। चारीविधान नाट्य उपयोगी चलने की क्रिया को चारी विधान कहा गया है जिसमे आकाश तथा भूमि मे चलने की क्रिया का वर्णन किया गया है मंडलविधान चारी अभिनय को करण खंड तथा मंडल का आधार माना जाता हैं जो कि प्रस्तुत अध्याय में वर्णित की गई है। गतिप्रचार पात्रों द्वारा गतिप्रचार या लय आधारित अध्याय हैं। जिसमें गति और लय को व्याख्यित किया गया है। कक्ष्या, परिधि तथा लोकधर्मी निरुपण रंगमंच की कक्षा की परिधि

तथा उसके उपयोग का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वाचिकाभिनय भरत मुनि के द्वारा स्वर तथा व्यंजन संबंधी वाचिक अभिनय को उनके लक्षणों सहित व्यख्यित किया गया है।

वृत्तिविधान छन्द का पात्रों के अनुसार उपयोग प्रस्तुत अध्याय में वर्णित किया गया है। भरत मुनि द्वारा समस्त छन्दों का उपयोग उदहरण सहित गुरू तथा लघु के वर्णों को व्यक्त किया गया है। काव्यलक्षणादि काव्य के छत्तीस लक्षण बताए गए है और साथ ही इस अध्याय के अंतर्गत अलंकारों के आकार–प्रकार आदि का भी वर्णन किया गया है। भाषा विधान प्राकृत भाषा के विषय मे चर्चा करते हुए, उसके लक्षणों की व्यखाया प्रस्तुत की गई है। सम्बोधन तथा काकुस्वरव्यंजन उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को तथा पात्रों के द्वारा किए जाने वाले सम्बोधन का वर्णन किया गया है जिसमे सभी लक्षणों और उनके विधानों को बताने का प्रयास किया गया है। दशरुपनिरुपण रूपक दसों भेदों का पूर्ण वर्णन किया प्रस्तुत किया गया है जिसे इस अध्याय के अंतर्गत समस्त उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया गया है। सन्ध्यग्ड़निरुपण नाट्य की कथावस्तु नाट्य का प्राण मानी जाती हैं। जिसकी रचना के विधान को भरत मुनि द्वारा समझाने का प्रयास किया जा रहा है।

वृत्तिविधान वृत्तियों की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए मधु–कैटभ वध का वर्णन प्रस्तुत किया गया है तथा वृत्तियों के लक्षणों की चर्चा की गई है। आहार्य अभिनयाध्याय आहार्य अर्थात् वेश–भूषा को वर्णित किया गया है, जिसे पात्र की भूमिका के अनुसार निर्धारित किया जाता है। सामान्य अभिनयाध्याय अंग वाणी तथा सत्व द्वारा होने वाले अभिनय की चर्चा इस अध्याय मे की गई है जिसमे सत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है। वैशिकोपचार मे पुरुष तथा स्त्री के पात्र के अनुसार चरित्र को व्याख्यित किया गया है। जिसमे उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को उनके अनुरूप रूप प्रदान किया गया है। चित्राभिनय अध्याय में मुद्राओं के मध्यम से अभिनय कर दिन, रात आदि को वर्णित किया गया है। नाट्य सिद्धि निरुपण में नाट्य के गुणों को बताया गया है तथा उसके लक्षणो को बताया गया है। आतोद्यविधान अध्याय में तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर वाद्यों को आतोद्य कहा गया हैं। जिसके नाट्य प्रयोग की विधि तथा लक्षणों को भरत के द्वारा इस अध्याय में बताया गया है। ततातोद्यविधान के अंर्तगत भरत मुनि के द्वारा रस के आधार पर षडज ग्राम की जातियों का वर्णन किया गया है साथ ही इस अध्याय के अंतर्गत त्त वाद्यों के स्वरूप, वादन शैली, तथा प्रकारों की चर्चा की गई है त् वाद्यों का सूक्ष्म ज्ञान इस अध्याय में निहित है।

सुषिर–आतोद्य विधानाध्याय सुषिर वाद्यों के लक्षण कहे गए है तथा सुषिर वाद्य के विधान को कहा गया है, जिसमें उसके स्वरों आदि को वर्णित किया गया है। ताल विधानाध्याय ताल तथा लय के नियमों का विस्तृत ज्ञान इस अध्याय से प्राप्त होता है। धुवाविधान के अंर्तगत ध्रुव विधान और गायकों तथा वादकों के गुण–दोषों की चर्चा की गई है। अवनद्धातोद्य विधानाध्याय अवनद्ध वाद्यों के लक्षण बताए गए है। प्रकृति विचाराध्याय पात्रों के द्वारा किस प्रकृति को अपनाया जाना है उसके लक्षणों को वर्णित किया गया है। भूमिका विकल्पाध्याय इस अध्याय के अंर्तगत पात्रों द्वारा निभायी जानें वाली भूमिकाओं को वर्णित किया गया है। नाट्यावताराध्याय के अंर्तगत स्वर्ग से धारा पर नाट्यशास्त्र के आने की कथा तथा भरत के पुत्रों को मुनियों द्वारा दिये गए श्राप की घटना का उल्लेख आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार छत्तिस अध्यायों का वर्णन इस अध्याय के अंर्तगत प्रस्तुत किया गया है और नाट्यशास्त्र सम्बन्धित समस्त जानकारी एक स्थान पर एकत्र करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

****